मई
2024

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 88 अंक–5 । प्रति– ₹ 25 । ₹–300 वार्षिक

05 | आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का प्रभाव
13 | स्वयं के द्वारा स्वयं की खोज है पुरुषार्थ चतुष्टय
41 | वनरक्षक भील महिलाएँ
60 | देव संस्कृति दिग्विजय को चल पड़ी चतुरंगिणी

आदर्श की उत्तमता

बाल्यावस्था वही उत्तम है, जो निरर्थक क्रीड़ाओं एवं संग दोषवश व्यसन–वासनाओं की पूर्ति में ही भ्रष्ट न होकर विद्याध्ययन में सार्थक हो।

युवावस्था वही उत्तम है, जिसकी शक्ति से सद्गुणों का विकास हो, सद्ज्ञान का सुंदर प्रकाश हो, सदाचरण की ही रक्षा हो, और धर्म–पथ पर चलते हुए सत्यानंदघन प्रियतम की प्राप्ति ही लक्ष्य हो। अशुभ कर्मों की ओर प्रेरित हुई इंद्रियों का दमन हो, दुर्विकारों का शमन हो तथा विषयों का दमन हो और शुभ कर्मों के लिए ही सदा तत्पर मन हो, जिसकी शक्ति से विषय–वासनाओं के पथ पर चंचल हुए मन का निरोध हो, स्वेच्छाचारिता का विरोध हो।

वृद्धावस्था वही उत्तम है, जिसमें सांसारिक पदार्थों के प्रति मोह–ममता का त्याग हो, केवल परमात्मा में ही अटल अनुराग हो, ऐहिक सुख–भोगों की तृष्णा पर क्रोध हो, बहिःवृत्तियों का अवरोध हो और सत्यासत्य का यथार्थ बोध हो।

बलवान वही उत्तम है, जो निर्बलों, असहायों की सहायता करने में शूर हो, जिससे आलस्य तथा भय सर्वथा दूर हो। संयम जिसके साथ में हो, इंद्रियरूपी घोड़ों की मनरूपी लगाम जिसके हाथ में हो, इसके साथ ही जो बुद्धिमान हो और निरभिमान हो।

धनवान वही उत्तम है, जो कृपण न होकर दानी हो, उदार हो, जिसके द्वारा धर्मपूर्वक न्craftयुक्त व्यापार हो, जिसके द्वार पर अतिथि का समुचित सत्कार हो, दीन–दुखियों का सदा उपकार हो, जिसके यहाँ विद्वानों एवं साधु–महात्माओं का सम्मान हो, जो स्वयं अति सरल और मतिमान हो।

बुद्धिमान वही उत्तम है, जिसमें अपने माने हुए ज्ञान से निराशा हो, यथार्थ सत्य को जानने की सच्ची जिज्ञासा हो, सद्गुरुदेव के प्रति पूर्ण निर्भरता हो और उन्हीं की आज्ञा–पालन में सतत तत्परता हो।

ज्ञानी वही उत्तम है, जिसकी बुद्धि से प्रवृत्ति–पोषक अज्ञान दूर हो, निवृत्ति–द्योतक भक्ति भरपूर हो, भव–भ्रांति नष्ट हो, परम शांति स्थिर और स्पष्ट हो, जिसके जीवन में मुक्ति विद्यमान हो और परमानंदमय परमात्मा की व्यापकता का सर्वत्र भान हो, जो क्रोध, अभिमान, माया आदि दुर्गुणों से रहित हो और धैर्य, क्षमा, सत्य–ध्यान और दया आदि सद्गुणों के सहित हो, जिसके समीप में शांति का वास हो, जिसके शब्दों से भ्रांति का नाश हो, जो पूर्ण त्यागी, वीतरागी हो और परमात्मा का ही अटल अनुरागी हो।

त्यागी वही उत्तम है, जिसका मन भोग–वासनाओं से सदा वियुक्त हो, जिसका अहं देहाभिमान से मुक्त हो। जिसमें किसी भी पदार्थ के प्रति अपनत्व न रहे, जो किसी को भी अपना न कहे, विचार की धारा में जिसकी आसक्ति, ममता वह जाए, जो नित्य है, उसके सिवा जहाँ अन्य कुछ भी न रह जाए।

— स्वामी रामतीर्थ

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
समय—प्रात: 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	88
अंक	:	05
मई	:	2024
वैशाख-ज्येष्ठ	:	2081
प्रकाशन तिथि	:	01.04.2024

वार्षिक चंदा

भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

महागुरु से महामिलन

महागुरु से महामिलन का देवविधान बना। अंतर्जगत में दिव्यता का अंकुरण हुआ। प्रकृति में प्रसन्नता के फूल खिले। नटराज ने नवनाट्य की रचना की। वसंत ने नवल किसलय—नवीन कोपलों से वंदनवार सजाए। आमकुंजों में आए नए बौरों के बीच कहीं दूर बैठी कोयल ने ब्रह्मवेला में कुहू-कुहू कहकर अगवानी की। उसी समय अंतरिक्ष का अनंत प्रकाश मानव रूप लेकर आँवलखेड़ा के एक आँगन में आया।

दिव्य गुरु ने अपनी दिव्य दृष्टि से धरती की गोद में साधनारत अपने पंद्रहवर्षीय शिष्य की सीमारहित संभावनाओं को परख लिया। पहचान तो जन्मों पहले से थी, इस जन्म और जीवन में परिचय अब हुआ। नियति का निर्धारण वर्ष 1926 ई. की उस प्रात:—24 वर्षीय साधना बनकर साकार हुआ। सभी जानते हैं कि वर्ष 1926 से 1950 के इन 24 वर्षों में भारत की भाग्यलिपि लिखी गई, लेकिन यह सूक्ष्म सत्य किसी-किसी को पता है कि इस सबका आधार यही तप-साधना बनी, जिसका बीजारोपण उस दिन की ब्रह्मवेला में हुआ था।

शिष्य के शिष्यत्व की अनेकों परीक्षाएँ लेकर गुरु उसे गुरुभार सौंपते हैं। पात्रता की कठोर-कठिन परीक्षाएँ और फिर इनकी पूर्णता पर नए दायित्व के नवीन वरदान। महान गुरु एवं महान शिष्य के बीच सारे संबंध-सूत्र इसी से जुड़े रहे। इसी के आधार पर भारत देश एवं विश्व-वसुधा के भाग्य एवं भविष्य की नवीन लिपि के लेखन का कार्य किया जाना था। ❒

▶ **'नारी सशक्तीकरण' वर्ष** ◀

विषय सूची

- ❋ आवरण—1 1
- ❋ आवरण—2 2
- ❋ महागुरु से महामिलन 3
- ❋ **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का प्रभाव 5
- ❋ ओंकार की महिमा एवं साधना-विधान 8
- ❋ **पर्व विशेष—शंकराचार्य जयंती**
  भारतीय संस्कृति के शिखर पुरुष आचार्य शंकर 10
- ❋ स्वयं के द्वारा स्वयं की खोज है पुरुषार्थ चतुष्टय 13
- ❋ सत्य तो एक ही है 15
- ❋ अध्यात्म पथ का विज्ञान एवं विधान 19
- ❋ भगवान श्रीकृष्ण की कूटनीति 22
- ❋ करें श्रमदेवता की आराधना 25
- ❋ भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ 28
- ❋ सुरंगों का अद्भुत संसार 31
- ❋ यह सत्य है या वह सत्य है 34
- ❋ क्या है सच्ची गुरुभक्ति? 36
- ❋ **पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा—20**
  तीन दिव्य उपास्य और उनके तीन महान वरदान 38
- ❋ वनरक्षक भील महिलाएँ 41
- ❋ **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—181**
  हिंदी सिनेमा पर शोध अध्ययन 43
- ❋ **युगगीता—288**
  संन्यास और त्याग 46
- ❋ **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  वसुधैव कुटुम्बकम् (प्रथम किस्त) 48
- ❋ **विश्वविद्यालय परिसर से—227**
  राष्ट्रीय मंच पर प्रतिष्ठित हुआ विश्वविद्यालय 54
- ❋ **साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला**
  सूक्ष्मजगत् की सुव्यवस्था 57
- ❋ **अपनों से अपनी बात**
  देव संस्कृति दिग्विजय को चल पड़ी चतुरंगिणी 60
- ❋ साधना में सुगति दो माँ (कविता) 66
- ❋ आवरण—3 67
- ❋ आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

सरयू तट पर श्रीराम जन्मभूमि की अनुकृति अश्वमेध की छवि

मई-जून, 2024 के पर्व-त्योहार

शनिवार	04 मई	वरूथिनी एकादशी	गुरुवार	23 मई	बुद्ध पूर्णिमा
शुक्रवार	10 मई	परशुराम जयंती/ अक्षय तृतीया	रविवार	02 जून	अपरा एकादशी 'स्मा.'
सोमवार	13 मई	सूर्य षष्ठी	गुरुवार	06 जून	वट सावित्री व्रत
मंगलवार	14 मई	गंगोत्पत्ति	बुधवार	12 जून	सूर्य षष्ठी
शुक्रवार	17 मई	जानकी जयंती	रविवार	16 जून	गायत्री जयंती/ परमपूज्य गुरुदेव महाप्रयाण दिवस
रविवार	19 मई	मोहिनी एकादशी	सोमवार	17 जून	निर्जला एकादशी/ईदुज्जुहा
मंगलवार	21 मई	नृसिंह जयंती	शनिवार	22 जून	कबीर जयंती

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का प्रभाव

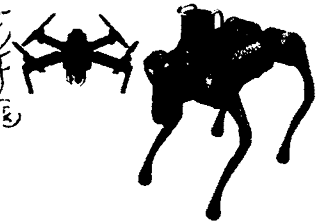

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (ए०आई०) कृत्रिम बुद्धि, विज्ञान एवं तकनीकी का नवीनतम आविष्कार है, जिसकी आज सबसे अधिक चर्चा हो रही है। आज जीवन का हर क्षेत्र आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस अर्थात कृत्रिम बुद्धि के दायरे में आ चला है, जिसके प्रयोग रोजमर्रा के जीवन में हर व्यक्ति अनुभव कर रहा है।

एक ओर जहाँ इसके साथ जुड़े लाभों एवं अनुदान-वरदानों की चर्चा हो रही है, तो वहीं दूसरी ओर इसके खतरे एवं संभावित दुष्परिणामों को लेकर भी गंभीर चिंता व्यक्त की जा रही है। कोई इसे मित्र के रूप में देख रहा है, तो कोई इसे तकनीकी दैत्य मानकर इसके दूरगामी प्रभावों को लेकर आशंकित है। इक्कीसवीं सदी की इस अद्‌भुत तकनीकी से जुड़े इन पहलुओं पर विचार आवश्यक हो जाता है।

प्रश्न उठता है कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (ए०आई०) अर्थात कृत्रिम बुद्धि है क्या? सरल शब्दों में मशीनों में भी मानव की तरह बौद्धिक क्षमता है, जिसे कृत्रिम ढंग से विकसित किया गया है। कोडिंग के माध्यम से मशीनों में इनसान की तरह बुद्धि को विकसित किया जाता है, जिससे वह इनसान की तरह स्वयं सीख सके, स्वयं निर्णय ले सके और कार्यों को अंजाम दे सके।

इस तरह मशीन लर्निंग के माध्यम से कृत्रिम बुद्धि के सहारे ऐसे कंप्यूटर या रोबोटिक सिस्टम तैयार किए जाते हैं, जो मानवीय मस्तिष्क की तरह कार्य करते हुए निर्धारित कार्यों को अंजाम दे सकें। संक्षेप में ए०आई० को इनसान की तरह सोचने वाला सॉफ्टवेयर कह सकते हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता की शुरुआत 1950 के दशक से मानी जाती है, जब इसके जनक जॉन मेकार्थी ने सबसे पहले इसकी व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहा था कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता बुद्धिमान मशीनों, विशेष रूप से बुद्धिमान रोबोट व कंप्यूटर प्रोग्राम को बनाने की अभियांत्रिकी है।

इसके विकसित होते स्वरूप में ऐतिहासिक पल सन् 1997 में तब आए, जब आईबीएम द्वारा बनाए गए डीप ब्लू चैस सॉफ्टवेयर ने तत्कालीन विश्व चैंपियन गैरी कास्परोव को हरा दिया था। इसके साथ कृत्रिम बुद्धि की स्वयं निर्णय लेने की अद्‌भुत क्षमता पर पूरा विश्व हतप्रभ हुआ था।

आज जीवन के हर क्षेत्र में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (ए०आई०) अर्थात कृत्रिम बुद्धि का उपयोग हो रहा है। हेल्थकेयर अर्थात स्वास्थ्य सुविधाओं में इसका उपयोग व्यापक स्तर पर चल रहा है। सामान्य स्वास्थ्य देख-भाल से लेकर शरीर के अंग-अवयवों की कार्य-प्रणाली की जाँच व निदान में इसका उपयोग हो रहा है।

ए०आई० स्कैन के माध्यम से छोटी-से-छोटी परेशानियों की पहचान करने में सहायता मिल रही है। रोगियों की विशेष स्वास्थ्य आवश्यकताओं के अनुरूप उपयुक्त उपचार के चयन करने, रोगी को याद दिलाने से लेकर उसकी देख-भाल और रिकॉर्ड की सँभाल आदि में ए०आई० का उपयोग किया जाने लगा है।

विशेष रूप से ए०आई० आधारित रोबोटिक सर्जरी, वर्चुअल डॉक्टर जैसी सुविधाओं में इसका उपयोग काफी प्रभावी ढंग से हो रहा है। कैंसर जैसे लाइलाज रोगों के शोध और अनुसंधान में इसकी संभावनाएँ असीम हैं। इस तरह ए०आई० के लाभ एवं उपयोगिता किसी वरदान से कम नहीं।

राष्ट्रीय सुरक्षा के मोर्चे पर आतंक, नक्सलवाद, सामूहिक हिंसा व भीड़ नियंत्रण आदि से निपटने में ए०आई० आधारित ड्रोन व उपकरणों के माध्यम से सुरक्षा-व्यवस्था को पुख्ता करने में ए०आई० तकनीक का उपयोग किया जा रहा है। सीमाओं की सुरक्षा के लिए स्मार्ट वॉल की योजना पर कार्य चल रहा है। इसी तरह आपदा नियंत्रण से लेकर साइबर सुरक्षा तक इसकी उपयोगिता का दायरा व्यापक है।

ए०आई० दोहराव वाले कार्यों को स्वचालित करती है। इस तरह यह औद्योगिक उत्पादकता को बढ़ाने में विशेष सहायता करती है। ए०आई० सेल्फ ड्राइविंग के माध्यम से दुर्घटनाओं को रोकने में सहायक है।

लेखन, संपादन तथा डिजायनिंग कार्यों में भी इसका बेहतरीन संयोजन किया जा सकता है। स्वास्थ्य के साथ शिक्षा, ग्राहक सेवा, निजी सहायक, भाषायी अनुवाद, मनोरंजन, निर्माण, परिवहन, स्वचालित वाहन, कृषि, पर्यावरण संरक्षण, शोध और रचनात्मकता के क्षेत्रों में ए०आई० सहायक सिद्ध हो रही है। इसके साथ गेमिंग, मौसम पूर्वानुमान, लेखा आदि में भी इसका उपयोग बखूबी हो रहा है।

इस तरह मानवीय क्षमताओं को बढ़ाने से लेकर प्रगति और खुशहाली बढ़ाने में ए०आई० के उपयोग बेशुमार हैं। ए०आई० के आधार पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में अधिक पारदर्शिता और निष्पक्षता सुनिश्चित होती है।

इन उपयोगिताओं के साथ ए०आई० अर्थात कृत्रिम बुद्धि के खतरे भी कम नहीं। गोल्डमैन सैक्स की रिपोर्ट के अनुसार, सन् 2030 तक आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के कारण 30 करोड़ लोग अपनी नौकरी खो बैठेंगे। ए०आई० आधारित मशीनीकरण व रोबोटिक्स के कारण सन् 2050 तक 50% मानव रोजगार की समाप्ति की आशंका व्यक्त की जा रही है।

विशेषकर कंप्यूटर प्रोग्रामर, सॉफ्टवेयर इंजीनियर, डेटा एनालिस्ट, कोडर, मार्केट एनालिस्ट जैसी नौकरियों पर इसका विशेष प्रभाव देखने को मिलेगा। लेखन, संपादन, डिजायनिंग जैसी रचनात्मक नौकरियाँ भी खतरे की जद में हैं। धीरे-धीरे यह दूसरे क्षेत्र की नौकरियों पर भी दखल देगा और वहाँ भी नौकरियों के लिए खतरा पैदा करेगा।

70% पेशेवर मानते हैं कि ए०आई० उपकरणों के कारण उनकी नौकरी खतरे में है। वहीं ए०आई० के विकास के चलते योग्य प्रतिभाओं की आवश्यकता का दबाव बढ़ रहा है, जबकि 78% पेशेवर लोग मानते हैं कि ए०आई० तकनीक के साथ उनकी कार्य करने की योग्यता वर्तमान में नहीं है।

माइक्रोसोफ्ट के एक सर्वे के अनुसार, चैटजीपीटी, गूगल बोर्ड और माइक्रोसोफ्ट बिंग जैसे ए०आई० टूल्ज के कारण कई कंपनियों को जहाँ कई कार्यों में आसानी हो रही है, तो वहीं मानवीय कौशल पर उनकी निर्भरता कम होती जा रही है। इस तरह एक ओर जहाँ इससे रचनात्मकता और उत्पादकता बढ़ाने में सहायता मिल रही है तो वहीं दूसरी ओर रोजगार का संकट भी पैदा हो रहा है।

स्टीफन हॉकिन्स जैसे मनीषियों ने कृत्रिम बुद्धिमत्ता की आशंका व्यक्त करते हुए कहा था कि इसका अत्यधिक प्रयोग मानव सभ्यता के लिए खतरा पैदा कर सकता है, जैसा कि हॉलीवुड की काल्पनिक विज्ञान फिल्मों; यथा—टर्मिनेटर, मैट्रिक्स व स्टारवार इत्यादि में दिखाया गया है।-रोबोट स्वयं अपनी पीढ़ियाँ विकसित कर सकता है, जो मानव सभ्यता को अपना गुलाम बना सकते हैं या नष्ट कर सकते हैं।

ए०आई० पर अधिक निर्भरता के कारण सोचने-समझने की क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है, व्यक्ति अधिक आलसी हो सकता है तथा इसका प्रभाव कला, साहित्यसृजन आदि पर भी पड़ सकता है। ए०आई० से जुड़ी संभावनाओं व चुनौतियों को देखते हुए विशेषज्ञों का मानना है कि ए०आई० में मानव कल्याण की काफी संभावनाएँ हैं तथा इसका उपयोग पूरी तरह से सोच-समझकर व आंशिक ही किया जाना चाहिए। संपूर्ण व स्वतंत्र रूप से ए०आई० का प्रयोग मानव सभ्यता के अंत का कारण बन सकता है।

निष्कर्षत: ए०आई० के साथ तकनीकी जगत् जिस तेजी से बदल रहा है, वह आश्चर्यजनक है एवं अनुमान से बाहर की चीज है। अब ए०आई० बनाने वालों ने ऐसे ए०आई० तैयार कर लिए हैं, जो स्वयं ही नए ए०आई० तैयार कर सकेंगे अर्थात इन्हें बनाने या प्रशिक्षण में इनसान की आवश्यकता नहीं रहेगी। निस्संदेह रूप में इससे तकनीकी पारदर्शिता बढ़ेगी तो वहीं इनसान की निजता में तकनीक का हस्तक्षेप भी बढ़ने की आशंका है।

इसके साथ इनसान के लिए फ्यूचर रेडी होने की चुनौती भी है। मशीनें जितना विकसित होंगी, हमें भी उतनी ही तेजी से विकसित होना होगा और सच ये भी है कि मशीनें कितनी ही विकसित क्यों न हो जाएँ, अंतत: इनसानी हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ेगी। इनसान कितने विवेकसंगत ढंग से इनका उपयोग करता है, सारा दारोमदार इस समझदारी पर टिका हुआ है। ❑

किसी गाँव में कहीं से तीन साधक आ गए। तीनों ईश्वरविश्वासी थे। उनके विषय में यह प्रचलित हो गया कि यद्यपि वे प्रार्थनाएँ तो सरल शब्दों में करते हैं, परंतु उनके द्वारा की गई प्रार्थना कभी विफल नहीं होती। गाँव के पुजारियों को यह जानकर चिंता हुई। सो वे उनसे मिलने पहुँचे। पुजारियों ने साधकों को कहा—"ईश्वर का नाम विधि-विधान से लिया जाता है, सरल शब्दों में नहीं।"

साधकों ने सहजता से उनका कहा मान लिया। उन्हें समझा कर पुजारियों ने नदी पार करने को नाव पकड़ी और आधे रास्ते पहुँचे तो देखा कि पीछे से तीनों साधक नदी पर दौड़ते आ रहे हैं। वे बोले—"पूजा का विधान भूल गए थे, पूछने के लिए दौड़कर आना पड़ा।" हतप्रभ पुजारियों को समझ आ गया कि ईश्वर का विश्वास, खोखली पूजा से बढ़कर है।

ओंकार की महिमा एवं साधना-विधान

भारतीय आध्यात्मिक परंपरा के दिव्य प्रतीकों में ओंकार का विशिष्ट महत्त्व है। हिंदू सहित बौद्ध, जैन, सिख धर्मों में भी ओंकार की ध्वनि को पवित्र माना गया है। प्रायः हर मंत्र के आगे इसका प्रयोग होता है और इसके बिना कोई भी मंत्र पूर्ण नहीं माना जाता। इसे स्वयं परमात्मा का स्वरूप मानते हुए, शब्द ब्रह्म की उपमा दी गई है।

शास्त्रों के अनुसार ओंकार परमात्मा के मुख से निकलने वाला पहला शब्द है, जिसने इस सृष्टि की रचना में प्राण डाले। ॐ अ उ म से मिलकर बना हुआ है, जिसके आधार पर शब्द-शास्त्री इसके तीन अंग बताते हैं; जो हैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश। एक अन्य विवेचना के अनुसार अकार सतोगुण का, उकार रजोगुण और मकार तमोगुण का प्रतीक है। ओंकार के ऊपर की बिंदी तीनों गुणों से परे गुणातीत अवस्था की सूचक है। ओंकार के गुणों का चिंतन करते हुए, जब साधक जप-ध्यान करता है, तो वह क्रमशः गुणों से पार होता हुआ, गुणातीत अवस्था को प्राप्त होता है और ब्रह्मांडीय चेतना से जुड़ता है।

यही ध्वनि ध्यान की गहराइयों में अंतःकरण में सुनाई देती है। अपने श्वास-प्रश्वास में हम इसी ओंकार ध्वनि को अनुभव कर सकते हैं। यह परमेश्वर से संबद्ध ध्वनि का अनाहत स्वरूप है, जिसका क्षरण नहीं होता। इस रूप में ओंकार ब्रह्मस्वरूप है। कठोपनिषद् में कहा गया है—''आत्मा को अधर अरणि और ओंकार को उत्तर अरणि बनाकर मंथन रूपी अभ्यास करने से दिव्य ज्ञानस्वरूप ज्योति का आविर्भाव होता है, जिसके आलोक में निगूढ़ आत्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है।''

मांडूक्योपनिषद् में भूत, वर्तमान और भविष्यरूपी त्रिकाल और उससे परे तत्त्व को ओंकार कहा गया है। स्वच्छंद तंत्र के अनुसार अ स्थूल जगत् का द्योतक है, उ सूक्ष्म जगत् का तथा म कारण जगत् का वाचक है। ओंकार त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा त्रिलोक भूःलोक, भुवःलोक तथा स्वर्ग लोक का मूर्तिमान प्रतीक है। तैत्तिरीयोपनिषद् में ऋषि कहते हैं—''ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही यह प्रत्यक्ष जगत् है और ओंकार ही इस जगत् की अनुकृति है।''

कठोपनिषद् के अनुसार—सारे वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, समस्त तपों को जिसकी प्राप्ति का साधन बताते हैं, जिसकी इच्छा से मुमुक्षु ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उस पद को मैं तुमसे संक्षेप में कहता हूँ। ओंकार ही वह पद है। प्रश्नोपनिषद् के अनुसार—साधक ऋग्वेद द्वारा इस लोक को, यजुर्वेद द्वारा अंतरिक्ष को तथा सामवेद द्वारा उस लोक को प्राप्त होता है, जिसे विद्वज्जन जानते हैं तथा उस ओंकाररूपी आलंबन के द्वारा ही विद्वान उस लोक को प्राप्त होते हैं, जो शांत, अजर, अमर, अभय एवं सबसे परे अर्थात श्रेष्ठ है। मुंडकोपनिषद् के अनुसार प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है, उसका सावधानीपूर्वक भेदन करना चाहिए।

भारत में प्रचलित विभिन्न साधना-पथों में सभी ओंकार की महिमा को स्वीकार करते हैं और यह

उनकी साधनापद्धति का अभिन्न घटक है। जैन धर्म में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनियों को पंच परमेष्ठी माना गया है। इनके आद्य अक्षरों को मिलाया जाए, तो ओंकार की ध्वनि निकलती है। सिख धर्म के संस्थापक गुरुनानक देव ने कहा है कि **इक ओंकार सतनाम करता पुरखनिरभौ निरवैर अकालमूरत** अर्थात ओंकार ही अटल सत्य है। इसका जप करने वाला पुरुष निर्भय, शत्रुरहित एवं अकाल-पुरुष सदृश हो जाता है।

बौद्ध धर्म में **ओम मणि पद्मे हुम्** मुख्य मंत्र है, जिसका अर्थ है कि ओंकार वह मणि है, जो कमल पर विराजमान है। हिंदू धर्म के अनुसार ओंकार इस ब्रह्मांड में सदा से था और रहेगा। इसका कभी क्षरण नहीं हो सकता। यह एक शाश्वत ध्वनि है। इस ब्रह्मांड में जब किसी तरह की ध्वनि नहीं होगी, तब भी मात्र एक ओंकार की ध्वनि सुनाई देगी।

इस तरह संपूर्ण ब्रह्मांड में सदैव ओंकार की ध्वनि गुँजायमान है। ओंकार ध्वनि अत्यंत पवित्र और शक्तिशाली है। किसी भी मंत्र से पहले ॐ जोड़ने से वह पूर्णतया शुद्ध और शक्तिशाली हो जाता है। ॐ का दूसरा नाम प्रणव या परमेश्वर है। योगसूत्र में महर्षि पतंजलि **तस्य वाचकः प्रणवः** कहकर ओंकार को ईश्वर का वाचक अथवा ईश्वर तक पहुँचने का माध्यम बताते हैं।

छांदोग्य उपनिषद् के अनुसार—**ओम् इत्येतत् अक्षरः**। ॐ अविनाशी, अव्यय एवं क्षरणरहित है। ॐ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चारों पुरुषार्थों का प्रदायक है। मात्र ओंकार का जप कर साधक अपने सभी उद्देश्य पूरे कर सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता के आठवें अध्याय में कहा गया है कि ओंकाररूपी ब्रह्म का उच्चारण करते हुए जो शरीर का त्याग करता है, वह परमगति को प्राप्त होता है।

हर युग में ओंकार की महिमा अक्षुण्ण रही है। मध्यकालीन युग में कबीर, नानक, तुलसी आदि संतों ने ओंकार की महिमा गाई। संत कबीर ओंकार का महत्त्व बखान करते हुए कहते हैं कि **ओ ओंकार आदि मैं जाना, लिखि मेटें ताहि ना माना। ओ ओंकार लिखे जो कोई, सोई लिखि मेटणा न होई॥** ईसाई घरों में लोगोज का सिद्धांत भारतीय स्फोट से मिलता है, जो आदि ध्वनि की ओर संकेत करता है। बाइबिल के अनुसार सबसे पहले ईश्वर थे, शब्द था, अन्य कुछ नहीं था।

स्वामी विवेकानंद भी स्फोट के सिद्धांत के आधार पर ओंकार के शाब्दिक महत्त्व को स्पष्ट करते हैं। स्वामी रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे— ''पूरे शास्त्र गायत्री महामंत्र में समा जाते हैं और पूरा मंत्र व्याहृतियों में तथा स्वयं व्याहृतियाँ ओंकार में समाहित हो जाती हैं।'' इस तरह स्पष्ट है कि ओंकार अनाहत ध्वनि—शब्द ब्रह्म ही सृष्टि की उत्पत्ति का आधार है।

वक्त्रे सरस्वती देवी सदा नृत्यति निर्भरम्।
मंत्रसिद्धिर्भवेत्तस्य जपादेव न संशयः॥
अर्थात आत्मसाधना से साधक की जिह्वा पर सरस्वती नृत्य करती है और जप मात्र से ही मंत्र की सिद्धि हो जाती है।

इस तरह ओंकार भारतीय परंपरा में शब्दों का संयोजन भर नहीं है, स्वयं में आदिमंत्र है, सब मंत्रों का आधार है, शीर्ष है। इसके साथ ध्यान की विधा को जोड़ते हुए आध्यात्मिक लाभ को प्राप्त कर सकते हैं। ओंकार का जप करने से मन को शांति तथा एकाग्रता की प्राप्ति होती है, शरीर की बीमारियों से रक्षा होती है तथा आध्यात्मिक जागरण का आधार तैयार होता है। ❑

पर्व विशेष-शंकराचार्य जयंती

भारतीय संस्कृति के शिखर पुरुष आचार्य शंकर

आदि शंकराचार्य सोलह वर्ष के हो चुके थे। उनकी जन्मकुंडली के अनुसार उनकी आयु पूर्ण हो चुकी थी। जिन महान कार्यों के लिए उन्होंने देह धारण की थी, वे अब पूर्ण होने को थे। उन्हें यह अनुभव भी होने लगा था। अब वे अधिकांश समय समाधि की अवस्था में ही व्यतीत करते थे। वे उत्तराखंड धाम के उत्तरकाशी तीर्थक्षेत्र में तीर्थयात्रा करते हुए अपने शिष्यों के साथ प्रवास कर रहे थे। अधिकांश समय समाधि-अवस्था में होने के कारण उन्हें खाने-पीने की भी सुध नहीं होती थी।

ऐसा देखकर उनके शिष्यों को बड़ी चिंता हुई। शिष्यों ने सोचा कि जन्मकुंडली में गुरुजी की आयु 16 वर्ष ही है, अतः कहीं गुरुदेव अंतिम यात्रा की तैयारी तो नहीं कर रहे? शिष्यगण मन-ही-मन अपने इष्टदेव से प्रार्थना किया करते—"हे इष्टदेव! आप हमें कोई ऐसा मंत्र बता दें, जिसके जाप से हमारे गुरुदेव की आयु दीर्घ हो जाए। हम अपने प्राण देकर भी अपने गुरुदेव की आयु दीर्घ होने की कामना करेंगे।"

उधर अधिकांश समय समाधि-अवस्था में ही व्यतीत करते हुए आचार्य शंकर को अपने शरीर की भी सुध नहीं थी। जब वे घंटों समाधि में होते तो उनके शिष्य ही उनके आवश्यक कार्यों का ध्यान रखते।

शिष्यगण हर उस युक्ति पर विचार करते, जिससे गुरुदेव समाधि की भावभूमि से उतरकर जीवभूमि यानी बाहर की ओर आकर्षित हों। तभी पद्मपाद ने अपने गुरुभाई प्रभृति को समझाते हुए कहा—"गुरुदेव को भाष्य में रुचि है, अतः यदि गुरुदेव को भाष्यादि पढ़ाने-सुनाने को कहें तो संभव है कि वे जीवभूमि पर उतरकर हमें भाष्य पढ़ाने को तैयार हो जाएँ।"

यह बात सभी शिष्यों को अच्छी लगी। इसलिए जब शंकराचार्य समाधि से उठे तब पद्मपाद ने उनके चरण पकड़ लिए और कहा—"गुरुदेव! आप हमें भाष्यादि पढ़ा दिया करें तो यह हमारा परम सौभाग्य होगा।" "ठीक है हम तुम्हें ब्रह्मसूत्र भाष्य पढ़ाया करेंगे।"—आचार्य ने कहा। यह सुनकर सभी शिष्य हर्षित हुए।

ब्राह्ममुहूर्त में संध्यावंदन, ध्यान-समाधि आदि के पश्चात एक दिन प्रातःकाल शंकराचार्य अपने शिष्यों को ब्रह्मसूत्र भाष्य सुनाने-समझाने लगे। तभी वहाँ एक वृद्ध ब्राह्मण पधारे। उन्होंने शिष्यों से पूछा—"सुना है यहाँ एक संन्यासी ब्रह्मसूत्र पढ़ाते हैं। वे कहाँ हैं? क्या तुम सब बता सकते हो?" शिष्यों ने कहा—"हाँ महात्मन्! वह संन्यासी कोई और नहीं, बल्कि हमारे गुरुदेव ही तो हैं। आप आसन ग्रहण करें। देखिए जिन्हें समस्त शास्त्र कंठस्थ हैं, वे पूज्य गुरुदेव हमारे बीच पधार रहे हैं।"

वृद्ध ब्राह्मण आसन पर नहीं बैठे, बल्कि वे अपलक नेत्रों से आचार्य शंकर को ही देखते रहे। जब आचार्य शंकर ने उनके निकट आकर उन्हें प्रणाम किया, तब वे वृद्ध ब्राह्मण बोले—"ये लोग तुम्हें वेदव्यास रचित ब्रह्मसूत्र का भाष्यकार बता रहे हैं। क्या यह सत्य है? यदि हाँ तो क्या तुम ब्रह्मसूत्र के तृतीय अध्याय के प्रथम पाद के प्रथम

सूत्र का तात्पर्य बता सकते हो?'' आचार्य शंकर बड़ी विनम्रतापूर्वक बोले—''हे महात्मन्! मैं सर्वप्रथम आप सहित उन सभी आचार्यों को प्रणाम करता हूँ, जिन्हें ब्रह्मसूत्र की व्याख्या ज्ञात है। सूत्र ज्ञात होने का मुझे कोई गर्व नहीं है, पर आपने जो प्रश्न किया है उसका उतर देता हूँ।''

इतना कहकर आचार्य ने उस सूत्र की व्याख्या उन वृद्ध ब्राह्मण को सुना दी। ब्राह्मण ने उस व्याख्या का खंडन करके और भी कई प्रश्न किए और आचार्य सभी प्रश्नों का उतर देते रहे। इस प्रकार वृद्ध ब्राह्मण एक के बाद दूसरा प्रश्न करते रहे और आचार्य उत्तर देते रहे। दोनों के बीच घंटों ब्रह्मसूत्र, वेद, उपनिषद्, विविध शास्त्र व विविध मतों पर चर्चा होती रही।

वृद्ध ब्राह्मण प्रश्न-पर-प्रश्न किए जा रहे थे और आचार्य उनका तुरंत उत्तर दिए जा रहे थे। वृद्ध ब्राह्मण और आचार्य शंकर की विद्वत्ता, स्मृति शक्ति और अंतर्दृष्टि देखकर वहाँ बैठे सभी शिष्य आश्चर्य से दोनों विद्वानों को देखते रह गए। शास्त्रार्थ में प्रात: से दोपहर हो चुकी थी, अत: वृद्ध ब्राह्मण अगले दिन पुन: आने को कहकर चले गए।

सभी शिष्य वृद्ध ब्राह्मण और आचार्य शंकर की विद्वत्ता को आश्चर्य से देखते रह गए। उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि उनके गुरुदेव आचार्य शंकर ज्ञान के अथाह भंडार हैं। पद्मपाद ने वृद्ध ब्राह्मण के वहाँ से जाने के बाद आचार्य शंकर से पूछा—''गुरुदेव! ये वृद्ध ब्राह्मण भी आपकी ही तरह ज्ञान के भंडार प्रतीत होते हैं। कहीं वेदव्यास ही ब्राह्मण वेश धारण करके आपकी परीक्षा लेने तो नहीं आए हैं?''

आचार्य बोले—''हाँ पद्मपाद! तुमने ठीक समझा है। महर्षि वेदव्यास ही यहाँ वेष बदलकर आए थे।'' शंकराचार्य मुस्कराकर बोले—''पद्मपाद! जब वे पुन: आएँ, तब तुम स्वयं उनसे उनका परिचय पूछ लेना।'' अगले दिन वे वृद्ध ब्राह्मण पुन: पधारे। आचार्य शंकर ने उनकी चरणवंदना करके उन्हें उपयुक्त आसन पर बिठाया और बोले—''महात्मन्! हम सबका यह विचार है कि आप वेदव्यास कृष्ण द्वैपायन हैं। संभव है कि आप किसी देवकार्य के लिए ही वेश बदलकर आए हैं। यदि यह सच है तो कृपा करके आप अपने असली रूप का दर्शन देकर हम सबको कृतार्थ करें।''

वृद्ध ब्राह्मण बोले—''तुम्हारा अनुमान सत्य है शंकर।'' इतना कहकर उन्होंने अपने असली रूप को प्रकट किया और आचार्य शंकर के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा—''मैं ही वेदव्यास हूँ। आचार्य शंकर हर्ष से भर उठे, वे वेदव्यास के चरणों में झुक गए और उनके चरणों की रज अपने मस्तक से लगाकर उनकी स्तुति करने लगे और कहने लगे—''हे मुनिवर! आपके दर्शन पाकर जीवन धन्य हो गया। हे मुनिवर! आपने जीव-कल्याण हेतु अनेक महान कार्य किए हैं। आपने पुराणों का संकलन किया है। आपने वेदों को चार भागों में विभक्त किया है। आपके लिए कुछ भी अज्ञात अथवा दुर्लभ नहीं है। आप हमारे आदिगुरु हैं। आप हम सबका प्रणाम स्वीकार कीजिए।''

महर्षि वेदव्यास आचार्य शंकर की स्तुति, नम्रता व ज्ञान से अति प्रसन्न हुए और बोले—''मैं तुम्हारी प्रतिभा से अधिक प्रसन्न हूँ शंकर! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता था। मेरे ब्रह्मसूत्रों का तुमने भाष्य लिखा है। यह सुनकर मैं तुम्हें देखने आया था। मुझे यह ज्ञात था कि शंकर भगवान, शंकर रूप में मेरे सूत्रों की भाष्य रचना करेंगे।'' ''महर्षि! यह भाष्यग्रंथ अब मैं आपके चरणों में अर्पित करता हूँ।''—ऐसा कहकर आचार्य शंकर ने भाष्यग्रंथ महर्षि के चरणों में रख दिए।

भाष्यग्रंथों को देखकर महर्षि वेदव्यास प्रसन्न हुए और बोले—"शंकर! सूत्रों में निहित मेरे मनोभावों को भाष्य में तुमने जिस प्रकार प्रकट किया है, वह अद्वितीय है, अनुपम है। तुम्हारे अतिरिक्त कोई दूसरा यह कर भी नहीं सकता था। गोविंदपाद और उनके गुरु गौड़पाद मेरे ही शिष्य संप्रदाय के हैं। गौड़पाद ने मेरे पुत्र शुकदेव से शास्त्रादि की शिक्षा ली थी।"

महर्षि आगे बोले—"वत्स शंकर! अब श्रुति व स्मृति की भाष्य रचना करने की जिम्मेदारी भी तुम्हारे ही ऊपर है।" "आपकी कृपा से यह कार्य भी मैं संपन्न कर चुका हूँ मुनिवर!"—ऐसा कहकर आचार्य शंकर ने उनके भाष्यों को भी वेदव्यास के चरणकमलों में रख दिया।

उन भाष्यों को देखकर वेदव्यास गद्गद हो गए और बोले—"तुमने यह कार्य जिस असाधारण ढंग से पूर्ण किया है, वह सचमुच असाधारण है, अतुलनीय है, अद्वितीय है।"

आचार्य शंकर महर्षि वेदव्यास के चरण छूते हुए बोले—"मुनिवर! अब तो सभी कार्य संपन्न हो चुके हैं, अतः मेरी इच्छा है कि अब आपके सामने ही समाधियोग से देह-त्यागकर इस धरा से विदा होऊँ। अब मुझे इसकी आज्ञा दीजिए मुनिवर!" आचार्य शंकर की बातें सुनकर महर्षि वेदव्यास ध्यान में लीन हो गए।

तत्पश्चात आँखें खोलते हुए बोले—"अभी तुम्हारे जाने का समय नहीं हुआ है शंकर! अभी तो तुम्हें वैदिक धर्म के लिए कई और कार्य भी करने हैं। अभी तुम्हें भारत के प्रसिद्ध पंडितों को शास्त्रार्थ में परास्त कर उन्हें अपना अनुयायी बनाकर वैदिक धर्म के महान कार्यों में स्वयं को पूर्णरूपेण लगाना है।"

ऐसा कहकर महर्षि वेदव्यास ने शंकराचार्य के सिर पर हाथ रख दिया और आशीर्वाद देते हुए कहा—"वत्स शंकर! तुम्हारी आयु 16 वर्ष और बढ़ गई है। तुम 32 वर्ष की आयु तक वैदिक धर्म के महान कार्य को करते रहोगे। तुम विभिन्न मतों के पाखंडों की पोल खोलकर वास्तविक अध्यात्म की प्रतिष्ठा कराओगे और तत्पश्चात तुम अपने स्वरूप में लीन हो जाओगे।" यह कहकर महर्षि वेदव्यास अदृश्य हो गए।

पास में बैठे पद्मपाद और अन्य शिष्य यह जानकर हर्षित हो उठे कि उनके गुरु की आयु 16 वर्ष और बढ़ गई है। तत्पश्चात आचार्य शंकर महर्षि वेदव्यास की इच्छा को भगवद्इच्छा मानकर वैदिक धर्म की ध्वज-पताका चहुँओर फैलाने को आगे चल पड़े और जीवनपर्यंत भगवद्इच्छा के अनुपालन में लगे रहे। वैदिक धर्म, अद्वैत वेदांत की स्थापना के लिए आचार्य शंकर ने अपना सब कुछ उत्सर्ग कर दिया। वे सचमुच एक महान योगी होने के साथ-साथ वैदिक धर्म के ध्वजाधारक भी थे और संदेशवाहक भी। ❑

आपको भी बाद में लगेगा कि हम भी समय पर जुड़ गए होते तो अच्छा रहता। युगशक्ति का उदय एवं अवतरण हो रहा है। आप इस अवतरण में हाथ भर लगा दें। आपकी भी गणना युगांतकारी पुरुषों में होने लगेगी। आप समय दीजिए, पैसा दीजिए। यह सोचकर नहीं कि हमारा काम रुकेगा। आप अपनी श्रद्धा को परिपक्व करने के लिए जो भी कर सकें वह कीजिए। घर-घर, जन-जन तक गायत्री का सद्ज्ञान पहुँचाने का काम करना। दवा तो हमारे पास है— आस्थाओं में छाई विषाक्तता की। आप मात्र सूई बन जाइए। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

स्वयं के द्वारा स्वयं की खोज है पुरुषार्थ चतुष्टय

जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण आवश्यक है। मनुष्य जीवन के प्रति जब तक दृष्टिकोण नहीं बदलता, पदार्थों के प्रति आसक्ति का भाव नहीं छूटता, जिजीविषा की मूर्च्छा से वह अलग नहीं होता तब तक उसके जीवन में विपदाएँ आती रहती हैं।

जीवन में सबकी रुचियाँ, उद्देश्य, आकर्षण, सोच, क्रिया बहुत कुछ भिन्न-भिन्न होते हैं। इसलिए उम्र का एक पड़ाव ऐसा आता है, जहाँ व्यक्ति स्वयं को चौराहे पर लक्ष्य की खोज में खड़ा पाता है। किधर मुड़ें? क्या करें? कहाँ जाएँ? और उसी समय भारतीय संस्कृति सत् की ओर प्रस्थान का संबोधन देती है।

श्रेष्ठता के शिखर तक पहुँचने के लिए तलहटी से विवेक के साथ यात्रा शुरू करने की इसी प्रेरणा का नाम है—पुरुषार्थ चतुष्टय। एक स्वस्थ, चरित्रवान, सुसंस्कारित समाज निर्माण के लिए हमारे धर्मगुरुओं ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी पुरुषार्थ चतुष्टय की उपयोगी विधि एवं सार्थक जीवनशैली प्रदत्त की है।

इन चार पुरुषार्थों से इहलोक और परलोक को सुखमय और स्वर्णिम बनाया जा सकता है। अधिकांश ऐसे लोग होते हैं, जो प्रतिबोध पाकर संबुद्ध होते हैं। बुराइयों के कुएँ में गिरते मनुष्य को किसी के दो हाथ थाम लें तो उन हाथों की पूजा होती है। पुरुषार्थ चतुष्टय भी एक ऐसा ही आध्यात्मिक उपक्रम है, जो मनुष्य को बचाता है अधर्म से, अज्ञान से, प्रमाद से, मूर्च्छा से और जीवन को देता है एक समग्र दिशा, विवेकपूर्ण दृष्टि और सार्थक जीवन आयाम।

जीवन को सफल और सार्थक बनाने की पहली सीढ़ी है—धर्म, फिर अर्थ और काम तथा अंत में मोक्ष की प्राप्ति। धर्म कोई उपासनापद्धति न होकर एक विराट और विलक्षण जीवनपद्धति है। यह दिखावा नहीं, दर्शन है। यह प्रदर्शन नहीं, प्रयोग है। यह चिकित्सा है मनुष्य को आधि, व्याधि, उपाधि से मुक्त कर सार्थक जीवन तक पहुँचाने की। यह स्वयं द्वारा स्वयं की खोज है।

धर्म—ज्ञान और आचरण की खिड़की खोलता है और आध्यात्मिक विशुद्धता आत्मा से है। धर्म आदमी को पशुता से देवत्व की ओर प्रेरित करता है। जियो और जीने दो के सिद्धांत का पालन करना और शांतिपूर्ण जीवन के आनंद को भोगना धर्म पद्धति का भाग है। अनुशासन के अनुसार चलना धर्म है। हृदय की पवित्रता ही धर्म का वास्तविक स्वरूप है। धर्म का सार जीवन में संयम का होना है।

मनुष्य तभी श्रेष्ठ माना जाता है, जब वह अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित कर धर्म का जीवन जीता है; जिससे मनोरथ की सिद्धि हो, सर्वजन की वृद्धि हो, उन्नति हो और हम संसार के बंधन से मुक्त हो जाएँ, वही धर्म है। ऐसा मनुष्य ही कर सकता है; क्योंकि प्रकृति के प्रांगण में सबसे उन्नत प्राणी मनुष्य ही है। अपने को जीवित रखना और दूसरों को जीवित रखने में मदद करना ही वास्तविक धर्म है।

धर्म के बाद दूसरा स्थान अर्थ का है। जीवन की प्रगति का मूल आधार ही धन है, अर्थ है। धर्म

ही हमें मार्ग दिखाता है कि अर्थोपार्जन करते हुए प्रकृति से, समाज से, राष्ट्र से और परिवेश से हमने जितना लिया है, उससे अधिक लौटाने का प्रयास करना चाहिए। यही वह सूत्र है, जो समाज के विकास का मूल आधार भी है। अर्जन के साथ विसर्जन के द्वारा ही मनुष्य अपना जीवन उन्नत, सुखद और प्रेरक बना सकता है और साथ ही समाज और राष्ट्र को उन्नति की ओर अग्रसर कर सकता है।

धर्म और अर्थ के बाद काम को तीसरा स्थान दिया गया है। भारतीय संस्कृति में काम को धर्मपूर्वक, संयम एवं मर्यादा में बाँधकर रखा गया है। काम के भोग पक्ष को मर्यादा, प्राकृतिक और सामाजिक नियमों व बंधनों से भोगने की व्यवस्था दी गई है। काम जीवन की प्राणशक्ति है। धर्म, अर्थ और काम इन तीनों सीढ़ियों पर सफलतापूर्वक आरोहण करने वाले व्यक्ति को सहज ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। उसका जीवन यशस्वी, प्रेरक एवं सार्थक हो जाता है।

मनुष्य जब तक अपनी इच्छाओं से बँधा है, मुक्ति की बात उसके लिए निरर्थक है। आज हम जिस माहौल में जी रहे हैं, राष्ट्र की हर इकाई स्वतंत्र अस्तित्व के लिए संघर्षरत है, क्योंकि कोई भी इनसान औरों की बैसाखियों से चलकर मंजिल तक नहीं पहुँचना चाहता है। जहाँ भी परतंत्रता होगी, व्यक्ति को उचित न्याय और अधिकार नहीं मिल सकेगा। बहुत जरूरी है मनुष्य अपने स्वतंत्र अस्तित्व का एहसास करे। उसमें मुक्त होने की तड़प जागे; क्योंकि बिना मुमुक्षा, पुरुषार्थ चतुष्टय संभव नहीं।

मनुष्य का मन जब भी जाग्रत होगा—वह लक्ष्य का निर्धारण सबसे पहले करेगा। बिना उद्‌देश्य मीलों तक चलना सिर्फ थकान, भटकाव और नैराश्य देता है, मंजिल नहीं। स्वतंत्र अस्तित्व के लिए मनुष्य में चाहिए—सुलझा हुआ दृष्टिकोण, देश, काल, समय और व्यक्ति की सही परख, दृढ़ संकल्प शक्ति, पाथेय की पूर्ण तैयारी, अखंड आत्मविश्वास और स्वयं की पहचान।

इसलिए यह व्यापक दृष्टिकोण और जीवन-दृष्टि आज से और अभी से अपनाना जरूरी है; क्योंकि यह दृष्टि ऐसे सुख की तलाश है, जो न पराधीन है और न ही खरीदा जा सकता है। स्वयं के द्वारा स्वयं के सुख को पाने की घटना है। वस्तुतः यह एक अनुभव है, जिसकी व्याख्या शब्द, शास्त्र, धर्मगुरु नहीं कर सकते। इसे तो सिर्फ जिया ही जा सकता है।

पुरुषार्थ चतुष्टय की इस प्रयोगशाला में कोई भी उतर सकता है। इसका संबंध उम्र से नहीं है। सचमुच, यह दृष्टिकोण एक प्रेरणा है, उन लोगों के लिए—जो चौराहे पर खड़े हैं दिग्भ्रमित होकर।

सुदृढ़, स्वास्थ्य, समर्थ मन, स्नेह-सहयोग, क्रिया-कौशल, समुचित धन, सुदृढ़ दांपत्य, सुसंस्कृत संतान, प्रगतिशील विकास-क्रम, श्रद्धा-सम्मान, सुव्यवस्थित एवं संतुष्ट जीवन का आधार केवल एक ही है—अध्यात्म।

आत्मार्थी हैं, पर रास्ता भूले हुए हैं। सत्य को देखना चाहते हैं, मगर आँखें बंद किए हुए हैं। लक्ष्य तक पहुँचना है, मगर कदम नहीं उठा पाते हैं। बहुत कुछ बनना चाहते हैं. लेकिन बनने की तैयारी नहीं है।

ऐसे लोगों को सही मंजिल देना, निर्णायक भूमिका तक पहुँचाना, विवेक की आँखें खोलना इस पुरुषार्थ चतुष्टयरूपी आध्यात्मिक आरोहण का प्रेरक संकल्प है। पक्षी जब भी उड़ेगा तो नीड़ को लक्ष्य बनाकर उड़ेगा। मनुष्य को भी पुरुषार्थ चतुष्टय के महान लक्ष्य को पाने के लिए धर्म का चयन करना चाहिए। हमें हर कदम पर सही दिशा, सही मंजिल पर पदचिह्न स्थापित करना चाहिए। सत्कर्म एवं सद्‌भाव से ही पुरुषार्थ चतुष्टय साधा जा सकता है। ❑

सत्य तो एक ही है

बात प्राचीनकाल की है। ऋषि उद्दालक आरुणि के पुत्र का नाम था—श्वेतकेतु। श्वेतकेतु को पढ़ना-लिखना भाता नहीं था और वह सदैव खेल-कूद में ही मग्न रहता। बचपन बीत जाने के बाद भी श्वेतकेतु का मन सदैव खेल-कूद में ही लगा रहता। विद्याप्राप्ति के प्रति श्वेतकेतु का कभी ध्यान नहीं जाता था।

यह देखकर ऋषि आरुणि सदा चिंतित रहते और यह विचार करते कि श्वेतकेतु में विद्याप्राप्ति और पढ़ने-लिखने के प्रति रुचि कैसे पैदा की जाए? वे अपने पुत्र पर कोई उपदेश भी थोपना नहीं चाहते थे; क्योंकि वे यह सोचते थे कि यदि श्वेतकेतु में नैसर्गिक रूप से बदलाव आता है, तभी वह बदल सकता है।

वे उसे तदनुरूप वातावरण उपलब्ध करने की सोचने लगे और उस हेतु उन्होंने सबसे पहले श्वेतकेतु की संगत बदलने का विचार किया। उन्होंने श्वेतकेतु को उन बालकों की संगत में रहने को प्रेरित किया, जो ब्राह्ममुहूर्त में उठकर नित्यक्रिया से निवृत्त हो आसन, प्राणायाम, भगवद्ध्यान और स्वाध्याय आदि किया करते थे। वे सभी पढ़ते-लिखते थे, वेदों का पाठ करते थे और समय पर खेलते-कूदते भी थे।

उन बालकों की संगति का असर धीरे-धीरे श्वेतकेतु पर भी होने लगा। श्वेतकेतु भी अब अपने साथियों की तरह ब्राह्ममुहूर्त में उठकर स्नान कर आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि का अभ्यास करने लगा। वह भी स्वाध्याय व वेदों का पाठ करने लगा। अब वह भी वेद की ऋचाओं को गुनगुनाने लगा था और उनके अर्थों को जानने का प्रयास भी करने लगा था। जब साथियों के बीच किसी विषय पर वाद-विवाद-संवाद होता तो वह उसमें अवश्य भाग लेता।

श्वेतकेतु के अन्य साथी बचपन से ही वेद-पाठ आदि करते आ रहे थे, इसलिए वाद-विवाद-संवाद में वे अक्सर बाजी मार ले जाते और श्वेतकेतु मात खा जाते, स्वयं को मात खाते देख दु:खी श्वेतकेतु ने संकल्प लिया—'अब मैं भी खूब पढ़ूँगा, स्वाध्याय करूँगा, वेदपाठी बनूँगा और वाद-विवाद-संवाद अर्थात ज्ञानचर्चा में प्रथम आऊँगा और सम्मान पाऊँगा।'

श्वेतकेतु की यह लालसा धीरे-धीरे तीव्रतम होती गई और इसलिए उसने पिता के समक्ष विद्याप्राप्ति और पढ़ने-लिखने की इच्छा प्रकट की। पुत्र की बातें सुनकर ऋषि आरुणि हर्षित हुए; क्योंकि वे तो पहले से ही ऐसा चाहते थे। उन्होंने श्वेतकेतु को शीघ्र ही एक ऋषि के आश्रम में भेज दिया। ऋषि आश्रम में रहकर मेरा पुत्र विद्याप्राप्ति कर अपने जीवन में सर्वत्र सफल होगा, यह सोचकर ऋषि बहुत प्रसन्न हुए।

ऋषि आश्रम में श्वेतकेतु की शिक्षा-दीक्षा, पढ़ाई आदि प्रारंभ हुई और इस प्रकार कई वर्ष बीत गए। श्वेतकेतु ज्ञान-विज्ञान में निपुण व वेद-शास्त्रों का ज्ञाता बन गया। एक दिन श्वेतकेतु सोचने लगा कि अब तो मैं वेद-शास्त्रों का ज्ञाता बन गया हूँ। मेरे गुरुजी व मेरे साथी भी मेरे ज्ञान की प्रशंसा करते रहते हैं। अब मैं निश्चित

ही शास्त्रार्थ में सबको हराकर महापंडित कहलाऊँगा।

उसे वह घटना भी याद आ रही थी, जब वह वाद-विवाद में अपने साथियों से मात खा जाया करता था। साथियों के हाथों मात खाने की कड़वी यादें उसे आज भी दु:खी करने लगीं और उसने तुरंत निश्चय किया कि वह शास्त्रार्थ में अपने साथियों को अवश्य ही हराएगा।

इस प्रकार वेद-शास्त्रों का ज्ञाता होने का अहंकार श्वेतकेतु के सिर चढ़ बोलने लगा। वह ऋषि आश्रम से घर पहुँचा और ज्ञान के अभिमान में उसने अपने पिता को प्रणाम करना भी आवश्यक नहीं समझा। श्वेतकेतु के आचरण को देखकर ऋषि आरुणि समझ गए कि श्वेतकेतु की शिक्षा अभी अधूरी है; क्योंकि इसे अभी शास्त्रों का सिर्फ सैद्धांतिक ज्ञान ही हुआ है, आध्यात्मिक ज्ञान नहीं। वेद-शास्त्रों का ज्ञान यदि जीवन-व्यवहार में न उतरे, आचरण में न उतरे तो वह ज्ञान एक बोझ मात्र ही है।

जब विद्या व्यक्ति के व्यवहार में उतरती है तो वह उसे विनम्र बनाती है, विनयी बनाती है और श्वेतकेतु तो प्रणाम करना भी भूल गया। वह विद्या उसके जीवन-व्यवहार में अभी उतरी नहीं। ऋषि आरुणि क्षुब्ध हुए, पर शांत रहे। न तो उन्होंने पुत्र पर क्रोध किया, न तो उनके चेहरे की त्योरियाँ चढ़ीं और न ही उनकी वाणी में आक्रोश आया; क्योंकि ऋषि यह जानते थे कि किसी व्यक्ति को भीतर से बदलने के लिए उसके भीतर ही बदलने का भाव उत्पन्न होना चाहिए और उनका क्रोध करना उसके अहं को और भी अधिक भड़का सकता है।

वे मधुर स्वर में बोले—"पुत्र श्वेतकेतु! तुम बारह वर्षों तक ऋषि आश्रम में अनुशासनपूर्वक रहकर विद्या अध्ययन कर घर लौटे हो। तुमने सब कुछ पढ़ा है, जाना है। वेद और उपनिषद् भी तुम्हें याद हैं, परंतु क्या तुम मुझे एक प्रश्न का उत्तर दे सकते हो?" श्वेतकेतु बोल उठा—"पिताजी! मैंने 12 वर्षों तक अध्ययन किया है और मैं पारंगत होकर लौटा हूँ। आप जो भी पूछना चाहें, पूछ लें।"

ऋषि आरुणि पहले तो श्वेतकेतु की ओर कुछ देर देखते रहे, फिर कुछ धीमे स्वर में बोले—"कुछ नहीं पुत्र! बस मैं तो सिर्फ यह जानना चाहता था कि संसार में वह एक वस्तु क्या है, जिसको जानने से सबका ज्ञान हो जाता है।"

श्वेतकेतु ने पिता का प्रश्न सुना और सोच में पड़ गया। वह बार-बार सोचने लगा—वह एक वस्तु क्या हो सकती है? वह एक वस्तु कौन-सी हो सकती है, जिसके जानने से सबका ज्ञान हो जाता है। वह अपनी बुद्धि पर बार-बार जोर लगाता रहा, प्रयास करता रहा, पर उस प्रश्न का कोई उत्तर उसकी बुद्धि नहीं दे सकी। अंत में जब उसे पिता के प्रश्न का उत्तर नहीं सूझ सका, तब वह लज्जित और विनयी होकर अपने पिता से उस प्रश्न का उत्तर जानने की प्रार्थना करने लगा। उसे अपनी भूल का भान हुआ।

वह अपने पिता के चरणों में गिर पड़ा और हाथ जोड़कर कहने लगा—"हे भगवन्! जिस एक वस्तु को जान लेने से सब कुछ जाना जा सकता है, उसे मैं नहीं जानता। लगता है मेरा ज्ञान अवश्य ही अभी अधूरा है। आप ही कृपा करके मुझे उस एक वस्तु के बारे में बताइए, जिसे जानने से सब कुछ जाना जा सकता है?"

ऋषि आरुणि अपने पुत्र को दुलारते हुए बोले—"वत्स श्वेतकेतु! वह वस्तु सत्य है। एक बार सत्य के स्वरूप को जान लेने से, पहचान लेने से सब कुछ जान लिया जाता है। फिर संसार में कुछ भी

जानने को शेष नहीं रह जाता।'' श्वेतकेतु को यह बात समझ में नहीं आई। उसने फिर प्रश्न किया—''पिताजी! संसार तो बड़ा विराट है। संसार रंग-बिरंगा है। संसार में विविध प्रकार के जीव हैं, प्राणी हैं, वनस्पतियाँ हैं, विषय हैं, वस्तु हैं, व्यक्ति हैं। सभी जीवों, वस्तुओं, व्यक्तियों, वनस्पतियों का परिचय भी अलग-अलग है, परंतु आप कहते हैं कि इन सबों का परिचय केवल एक सत्य को जानने मात्र से हो जाता है। मेरी समझ में यह बिलकुल नहीं आया।''

ऋषि श्वेतकेतु को समझाने लगे—''वत्स! सत्य एक है, पर उसके रंग अनेक हैं।'' यह बात अभी भी श्वेतकेतु की समझ से परे थी। उसने पुनः प्रश्न किया—''पूज्यवर! क्षमा करें। पर आपके हाथ की अँगूठी और किसी कन्या के गले का हार दोनों अलग-अलग नहीं हैं क्या?'' ''पुत्र, यही तो मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ। तुमने जिसे दो कहा वह एक ही स्वर्ण के दो रूप हैं। अँगूठी में भी स्वर्ण है और हार में भी स्वर्ण है। उसी एक स्वर्ण के अँगूठी और हार दो अलग-अलग नाम हैं। अलग-अलग रूप हैं। स्वर्णरूपी वस्तु एक ही है, पर उसके नाम, रूप, रंग, कार्य अलग-अलग हैं।''

इस बार श्वेतकेतु गंभीर हुए। ऋषिवर श्वेतकेतु को पुनः समझाते हुए बोले—''हे पुत्र! यह नाम, रूप, रंग, कार्य, स्वरूप जगत् में अलग-अलग दिखते अवश्य हैं, पर वे अलग-अलग रूप एक ही सत्य के अलग-अलग अथवा भिन्न-भिन्न आभास हैं। सत्य तो एक ही था, एक ही है और एक ही रहेगा। वह सत्य ही ब्रह्म है। उस सत्यरूपी ब्रह्म के संकल्प से तेज उत्पन्न हुआ, फिर जल उत्पन्न हुआ और उसके बाद अन्न उत्पन्न हुआ। जगत् की सभी वस्तुएँ तेज, जल और अन्नमय हैं। जहाँ प्रकाश है, वहाँ तेज तत्त्व है; जहाँ द्रव्य है, वहाँ जल तत्त्व है और जहाँ कठोरता है, वहाँ अन्न अथवा पृथ्वी तत्त्व है।''

''परंतु पिताजी! प्रकाशरूप अग्नि में भी तो अनेक रंग हैं?'' श्वेतकेतु ने पुनः प्रश्न किया। ''हाँ वत्स! अग्नि में लालिमा तेज की है। सफेदी जल की है और श्यामता पृथ्वी की है। इसी प्रकार अन्न की तीन क्रियाएँ हैं—विष्ठा, मांस और मन। उसी प्रकार जल के स्थूलभाग से मूत्र, मध्यम भाग से रक्त और सूक्ष्मभाग से प्राण बनता है।'' ऋषिवर ने उसे समझाते हुए बताया। ''तब तो पूज्यवर! मन अन्न से बनता है, प्राण जल से और वाणी तेज से।''—श्वेतकेतु ने पूछा।

''हाँ श्वेतकेतु! तुमने ठीक समझा है। सबका मूल सत्य ही है।'' अब श्वेतकेतु को ऋषिवर की गूढ़ बातें समझ में आने लगी थीं। वह गंभीर होकर बोला—''तात! तब तो देव व प्राणी सभी एक ही सत्य के अलग-अलग स्वरूप हैं।'' ऋषि आरुणि बोले—''यही तो सत्य है वत्स! और यह सत्य अणु की भाँति सूक्ष्म है। जगत् में जो कुछ दृश्यमान है, उसके मूल में सत्य ही है। बाहरी भेद केवल दिखावटी है, मिथ्या है।''

श्वेतकेतु की बुद्धि अब दर्पण की भाँति निर्मल होती जा रही थी और विषय की गंभीरता उसके समक्ष स्पष्ट होती जा रही थी। अपनी बात को स्पष्ट करते हुए श्वेतकेतु बोला—''तब तो देश, काल, धर्म, संप्रदाय के नाम पर संसार में जो भेद किया जाता है, वह भी असत् ही है न पिताजी?''

पिता बोले—''हाँ वत्स! तुम बिलकुल सही कह रहे हो। शहद में अनेक वृक्षों का, पुष्पों का रस होता है, पर वह रस अलग-अलग होकर यह नहीं जानता कि मैं किस वृक्ष का रस हूँ। उसी प्रकार जीव की दशा है। वह सत् का ही, ब्रह्म का ही अंश है, पर अज्ञान की स्थिति में होने के

कारण वह सत् को नहीं जानता और इसलिए आपस में भेद करता है, तदनुरूप कर्म-व्यवहार करता है, और दु:ख भोगता है। जो सूक्ष्म है, वही आत्मा है और जो आत्मा है, वही परमात्मा है यानी सत् है। यही सत् संपूर्ण सृष्टि का ज्ञान है और इस सत् को जानने से ही सब कुछ जान लिया जाता है।''

पिता के उत्तर को सुनकर श्वेतकेतु अनायास ही कह उठा—''पिताजी! तब तो ईश्वर का अंश, ब्रह्म का अंश होने के कारण हम सब एक ही हैं। अलग-अलग शरीरों में, रूपों में होकर भी हम सब एक ही हैं; क्योंकि हम सब उसी एक सत् के अलग-अलग रूप हैं, अंश हैं, आभास हैं।''

इस पर ऋषि बोले—''हाँ वत्स! हम सब एक हैं और उस एक सत् (ब्रह्म) को वेद-शास्त्रों को कंठस्थ कर लेने मात्र से नहीं जाना जा सकता है। वेद-शास्त्रों में ब्रह्म के विषय में जो कुछ कहा गया है, उस सत् को जानने के लिए अपने हृदय गुफा में स्थित आत्मा में ब्रह्म का सदैव ध्यान करते रहना आवश्यक है।

''उस ब्रह्म का आत्मा में निरंतर ध्यान करते रहने से ब्रह्म की अनुभूति होती है, सत् का साक्षात्कार होता है और हमारी जीवन-दृष्टि बदल जाती है। जीवन-दृष्टि के बदलने से हमारे जीवन जीने का तरीका भी बदल जाता है। हृदय में, आत्मा में सदैव भगवच्चेतना की अनुभूति होने से हम सृष्टि के कण-कण में भगवद्सत्ता की अनुभूति करते हैं। हमें हर वस्तु में, व्यक्ति में, प्राणी में वह एक ब्रह्म ही दृष्टिगोचर होता है। हम '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' की दृष्टि से ही सबको और सब कुछ देखते हैं। फिर हमें यह अनुभव होता है कि शास्त्रार्थ सत्य को प्रकाशित करने मात्र के लिए ही किया जाना चाहिए। किसी को परास्त करने या अपमानित करने के लिए नहीं।''

ऋषिवर की बातें सुनकर श्वेतकेतु उस एक सत् को (ब्रह्म को) जानने के लिए अब उस ब्रह्म का निरंतर ध्यान करने लगे, स्वाध्याय करने लगे और फिर स्वभावत: ही सबके प्रति सद्व्यवहार, मधुर व्यवहार करने लगे। वेद-शास्त्रों में कही गई बातें उनके स्वयं के आचरण से भी प्रकट होने लगीं। ❑

पत्थरों की कतार शिल्पकार के द्वार पर तराशने के लिए लगी थीं। जैसे ही शिल्पकार की हथौड़ी पहले पत्थर पर लगी, वह आर्त्त स्वर में कराहने लगा।

उसकी यह स्थिति देख शिल्पकार ने उसे छोड़कर दूसरे पत्थर को पकड़ा। उसने भी यही व्यवहार किया। अंत में एक पत्थर तैयार हुआ तो शिल्पकार ने उसे तराशकर भगवान शिव की एक सुंदर प्रतिमा बना डाली।

सब उस मूर्ति के आगे अवनत होने लगे तो शेष पत्थरों ने शिकायत की—''उन्हें यह सौभाग्य क्यों प्राप्त नहीं है?''

शिल्पकार उनसे बोला—''सृजन की प्रक्रिया ध्वंस के बाद ही हो पाती है। जो गलने-विसर्जित होने को तैयार नहीं, वह कैसे नवनिर्माण का साक्षी बन सकेगा।'' कष्टों को सहकर ही सुखद परिस्थितियाँ निर्मित होती हैं।

अध्यात्म पथ का विज्ञान एवं विधान

अध्यात्म पथ स्वयं को समग्र रूप से जानने की, उस परम सत्ता से जुड़ने की तथा आत्मपरिष्कार एवं आत्मविस्तार की प्रक्रिया है। कितने सारे लोग इस पर चल पड़ते हैं, बड़े उत्साह के साथ शुरुआत करते हैं, फिर रास्ते में ही हिम्मत हार बैठते हैं। कुछ सांसारिक राग-रंग को ही सब कुछ मान बैठते हैं, तो कुछ संकीर्ण स्वार्थ-अहंकार के व्यापार में उलझ कर, जीवन के आदर्श से समझौता कर बैठते हैं और कुछ आलस्य-प्रमाद में भ्रमित होकर बहुमूल्य जीवन को यों ही बरबाद कर देते हैं।

इसमें प्राय: इस समझ का अभाव मुख्य कारक रहता है कि अध्यात्म चेतना के परिष्कार का विज्ञान है, जिसमें जन्म-जन्मांतरों से मलिन चित्त एवं भ्रमित मन के साथ वास्ता पड़ रहा होता है। अचेतन मन के महासागर को पार करते हुए चेतना के शिखर का आरोहण करना होता है, आगे बढ़ना होता है। निस्संदेह मार्ग कठिन है, दुरूह है। पूर्व में कृत कर्मराशि जब पहाड़ जैसा चट्टानी अवरोध बनकर राह में खड़ी हो जाती है, तो साधक की आस्था डाँवाडोल हो जाती है। सस्ती पूजा-पत्री, भोग-चढ़ावे व चिह्नपूजा के सहारे धर्म-अध्यात्म के पथ पर बहुत कुछ बटोरने के फेर में चला पथिक मार्ग में ही धराशायी हो जाता है। यहाँ तक कि नास्तिक हो जाता है और भगवान तथा समर्थ गुरु तक को कोसने लगता है।

जबकि धर्म-अध्यात्म पथ का अपना विधान है, अपना विज्ञान है। इसकी थोड़ी-सी भी समझ साधक को राजमार्ग से विचलित नहीं होने देती और वह पगडंडियों में नहीं उलझता। धर्म-अध्यात्म की शुरुआत धार्मिकता की प्राथमिक कक्षा से होती है, जिसमें पूजा-पाठ से लेकर कर्मकांड का सहारा लिया जाता है, लेकिन स्वाध्याय एवं आत्मचिंतन के साथ साधक की समझ भी सूक्ष्म होती जाती है। आस्तिकता के भाव के जागरण के साथ, श्रद्धा-निष्ठा परिपक्व होती हैं। इसी तैयारी के बाद अध्यात्म की कक्षा में प्रवेश मिलता है।

आश्चर्य नहीं कि अध्यात्म पथ पर चलने वाले ऋषियों ने इसे छुरे की धार पर चलने के समान दुस्साध्य बताया है, लेकिन इस विकट पथ का वरण करने वाले मुमुक्षु पथिकों ने भी कब हार मानी है। मार्ग की दुरूहता को जानते हुए भी अंतर की पुकार के बल पर वे हर युग में इस पथ का संधान करते रहे हैं और किसी समर्थ के अवलंबन के साथ अपार धैर्य, अनंत श्रद्धा और अनवरत प्रयास के साथ अभीष्ट को सिद्ध करते रहे हैं।

निस्संदेह समर्थ गुरु का अवलंबन कार्य को और सरल बना देता है। हमारा परम सौभाग्य है कि अवतारी गुरुसत्ता का सान्निध्य हमें मिला है। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव के सिद्धसूत्रों के साथ अध्यात्म का व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक स्वरूप हमारे लिए सहज सुलभ है, लेकिन इनको जीवन में वरण करने, धारण करने के लिए साहस, निष्ठा एवं तैयारी की न्यूनतम माँग की जाती है। आखिर हर मार्ग अपनी कीमत माँगता है।

फिर जो चीज जितनी कीमती होती है, उसका उतना ही मूल्य भी चुकाना होता है। एक किसान

फसल के लिए वर्ष भर तप करता है, एक व्यापारी अभीष्ट लाभ के लिए तन-मन व धन की सारी पूँजी झोंक देता है। एक विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण होने व इसमें अव्वल आने के लिए समस्त सुख-सुविधाओं को त्यागते हुए एकांतिक प्रयास एवं निष्ठा के बल पर अभीष्ट मंजिल तक पहुँचता है।

इसी तरह अध्यात्म पथ भी अपनी कीमत माँगता है; जिसमें चित्त-चेतना की शुद्धि एवं परिष्कार प्रधान है। स्वयं को गलाकर-मिटाकर सब कुछ पाने की कला अध्यात्म है। इसमें सबसे पहले चित्त का परिष्कार करना होता है। इसी के साथ जन्मों से अज्ञान के परदे में ढका आत्मज्ञान का सूर्य प्रकाशित होता है और अपने ईश्वरीय अस्तित्व का बोध कराता है।

हालाँकि समर्थ गुरु एवं परमात्मा की कृपा तो सदा से ही उनकी सभी संतानों पर अजस्र रूपों में बरसती रहती है। इसको ग्रहण करने व धारण करने की क्षमता का अभाव ही मुख्य कारण है कि अधिकांशतया जीवन इनसे रीता रह जाता है। जिस मात्रा में साधक-शिष्य इसको धारण कर पाता है, उसी अनुपात में उसका आत्मिक विकास होता है। अध्यात्म विज्ञान का कार्य अंततः जीवन का कायाकल्प है, मनुष्य में देवत्व का उदय है। यह उसकी अंतर्निहित दिव्य संभावनाओं व क्षमताओं का जागरण एवं विकास है।

इसके अंतर्गत चित्त के प्रक्षालन के साथ इसका परिष्कार प्रारंभ होता है, जो स्वयं में समयसाध्य एवं कष्टसाध्य प्रक्रिया है। अपार धैर्य, अटूट श्रद्धा एवं निरंतर प्रयास के साथ यह कार्य संपन्न होता है।

बारंबार असफलता के बावजूद साधक हिम्मत नहीं हारता और बार-बार प्रयास करता है। हजार असफलताओं के बाद हजार बार प्रयास करने का जीवट और हर हार के बाद पुनः उठकर आगे बढ़ने का अदम्य जज्बा अध्यात्म पथ को परिभाषित करता है। अध्यात्म पथ पर अभीष्ट को उपलब्ध सभी साधकों के जीवन दृष्टांत इसी सत्य की गवाही देते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव ने इसके निमित्त आत्मनिरीक्षण, आत्मसमीक्षा, आत्मसुधार और आत्मनिर्माण की प्रक्रिया का प्रतिपादन किया है। दैनिक जीवन में आत्मबोध से लेकर तत्त्वबोध की व्यावहारिक साधना को बताया है, जिसमें संयम, स्वाध्याय और सेवा के साथ उपासना, साधना, आराधना की त्रिवेणी में अवगाहन करना पड़ता है और गायत्री की सामान्य साधना से लेकर सावित्री एवं पंचकोशी साधना को करना होता है; जिसे साधक अपनी स्थिति के अनुरूप, उपयुक्त मार्गदर्शन में संपन्न करता है और देर-सबेर अध्यात्म पथ पर चलते हुए आत्मकल्याण के साथ लोक-कल्याण के महत्तर उद्देश्य को पूर्ण करता है।

दैवी कृपा साथ रहते हुए भी साधक को एकाकी ही इस पथ को पार करना होता है। अपनी अंतरात्मा की पुकार पर युगधर्म के रूप में अध्यात्म पथ पर आरूढ़ साधक इस मार्ग का सहर्ष वरण भी करता है। परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में साहस ने हमें पुकारा है। समय ने, युग ने, कर्त्तव्य ने, उत्तरदायित्व ने, विवेक ने, पौरुष ने हमें पुकारा है। यह पुकार अनसुनी न की जा सकेगी।

आत्मनिर्माण के लिए, नवनिर्माण के लिए हम काँटों भरे रास्ते का स्वागत करेंगे और आगे बढ़ेंगे। लोग क्या कहते हैं और क्या करते हैं, इसकी चिंता कौन करे? अपनी आत्मा ही मार्गदर्शन के लिए पर्याप्त है। लोग अँधेरे में भटकते हैं, भटकते रहें। हम अपने विवेक के प्रकाश का अवलंबन कर स्वतः ही आगे बढ़ेंगे। कौन विरोध करता है, कौन

समर्थन—इसकी गणना कौन करे ? अपनी अंतरात्मा, अपना साहस अपने साथ है और हम वही करेंगे, जो करना अपने जैसे सजग व्यक्तियों के लिए उचित और उपयुक्त है।

मार्ग में लोभ के झोंके, मोह के झोंके, नामवरी के झोंके, यश के झोंके, दबाव के झोंके आएँगे, जो आपको पथ से विचलित करने का भरसक प्रयास करेंगे, कहीं-से-कहीं घसीटकर ले जाने की चेष्टा करेंगे, लेकिन तुम भटकना मत, डिगना मत। जब भी भटकन आए तो अपने उस दिन की, उस समय की मनःस्थिति को याद कर लेना, जबकि आपके भीतर श्रद्धा का एक अंकुर उगा था, जब आप इस महान कार्य के लिए श्रेष्ठ पथ पर एकाकी साहस के बूते चल पड़े थे।

एक ही बात याद रखना कि परिश्रम करने के प्रति हमारी जो उमंग और तरंग होनी चाहिए थी, उसमें कहीं कोई कमी तो नहीं आई। अंदर ईमान और ऊपर भगवान को साथ लेकर अपनी जीवन-साधना के पथ पर तुम सदा—अनवरत आगे बढ़ते रहना।

तमाम प्रतिकूलताओं के बीच तुम्हें अपने मन को सदा गुरुकार्य में लगाए रखना होगा। इसे बेकार न रहने देना, जीवन को गंभीरता के साथ बिताना। एक-एक पल का सुनियोजन करना। तुम्हारे सामने आत्मोन्नति का महान कार्य शेष पड़ा हुआ है और पास में समय थोड़ा है। यदि इसमें असावधानी बरतते हो, मन को भटकने देते हो, तो और बुरी स्थिति को प्राप्त होगे, पश्चात्ताप और शोक की अग्नि में जलना पड़ेगा। जबकि धैर्य और आशा का दामन थामकर आगे बढ़ोगे, तो शीघ्र ही जीवन की समस्त स्थितियों का सामना करने की योग्यता तुममें आएगी और जीवन में निर्धारित महानतम अभीष्ट को तुम प्राप्त होओगे। ❑

एक नगर में एक महिला रहा करती थी। अपने भविष्य को लेकर उसके मन में बड़ी उधेड़बुन चलती और उसी विषय में सोच-सोचकर वह बहुत जल्दी चिंतित परेशान हो जाया करती थी।

एक दिन उसी बेचैनी की अवस्था में उसने भावपूर्ण हृदय से भगवान को पुकारा और उनसे अपने चित्त में चलती उद्विग्नता को शांत करने के लिए कहा तो भगवान की आवाज उसे अपने अंतर्मन में सुनाई पड़ी, जो उससे बोली—"बेटी! तू मेरी सबसे प्यारी आत्मा है। तू अंधकार की कितनी भी परतों के पीछे क्यों न हो, मेरी नजरों से कभी दूर नहीं है। कितनी भी चिंता हो और कैसी भी परेशानी क्यों न आए, मुझे बुलाना—मैं दौड़ा चला आऊँगा।"

भगवान का साथ मिलते ही उस महिला का आत्मबल जाग उठा और उसे अनुभव हुआ कि भगवान तो क्षण-प्रतिक्षण उसके साथ ही हैं। इसके बाद वह प्रगति के नित नए सोपानों को प्राप्त करती चली गई। भगवान पर विश्वास सबको भवसागर से पार करा देता है।

भगवान श्रीकृष्ण की कूटनीति

धर्मशास्त्रों में दशरथपुत्र राम को बारह तथा श्रीकृष्ण को सोलह कलाओं से युक्त संपूर्ण अवतार कहा गया है। आधुनिक चिंतन ने भी उपरोक्त कथन की सारगर्भिता को पूर्णरूप से स्वीकार किया है।

वास्तव में भारतीय साहित्य में श्रीकृष्ण का चरित्र अद्‌भुत है। ग्रंथकारों ने यद्यपि अनेक गाथाओं में उनकी चतुर्मुखी प्रतिभा का विलक्षण रूप चित्रित किया है, परंतु उनकी कूटनीतिज्ञ सूझ-बूझ अन्य सब प्रतिभाओं में सर्वोपरि ठहरती है। साधारणतः श्रीकृष्ण की कूटनीतिक बुद्धि की झलक जनता को कौरव-पांडव युद्ध में ही देखने को मिलती है।

इस झलक का स्वरूप उनके जीवन के उत्तरार्द्ध काल से भी संबंधित है। वास्तव में जीवन के प्रारंभ काल से ही उनकी कूटनीति का प्रभाव उस समय सारे संसार में छा गया था। कंस के वध के पश्चात कृष्ण का सबसे प्रबल शत्रु कंस का ससुर जरासंध हो गया था, जो उस समय भारत भर में सबसे प्रतापी सम्राट माना जाता था।

महर्षि व्यास ने उस समय तक हुए केवल पाँच व्यक्तियों को ही सम्राट माना है। ये व्यक्ति भी केवल एक-एक गुण के कारण सम्राट पद पर अधिष्ठित हुए थे। मांधाता शत्रुओं को जीतकर सम्राट बने थे, राजा भगीरथ प्रजापालक होने के गुण से, कार्तवीर्य अर्जुन तपोबल के कारण तथा राजा भरत अपने स्वाभाविक गुणों से सम्राट बने थे। पाँचवें सम्राट मरुत् अपनी समृद्धि के कारण उस पर आरूढ़ हुए। ऐसा विदित होता है कि इन गुणों के आधार पर उन्होंने सर्वोच्च पद प्राप्त किया।

कृष्ण द्वैपायन व्यास ने जरासंध में अनेकों गुणों की विद्यमानता होने से, उसे प्रतापी सम्राट माना है। उसने देश के तत्कालीन 100 राजाओं में से 86 राजाओं को विजित कर उन्हें अपने कारागार में बंद कर रखा था। शेष 14 पर भी विजय प्राप्ति के लिए उसका अभियान चल रहा था। इस तथ्य से उसके असीम बलशाली होने का प्रमाण मिलता है।

कुंतिभोज, वृष्ठि और अंधक आदि किसी भी राज्य की उससे लड़ने की सामर्थ्य नहीं थी। अपनी इस विजय से उसे गर्व और अभिमान भी हो गया था। अपने जामाता कंस के मारे जाने के पश्चात वह कृष्ण से ईर्ष्या करने लगा था। वह उन्हें अपना प्रबल शत्रु भी मानता था।

श्रीकृष्ण ने बड़े यत्न से अपने क्षेत्र में एकता स्थापित करने के उद्‌देश्य से भोजराज वंश के प्रमुख आहुक की पुत्री का विवाह अक्रूर से करा दिया। इससे जाति का संगठन तो हो गया, परंतु फिर भी उनमें जरासंध से मुकाबला करने की शक्ति उत्पन्न नहीं हो सकी।

जरासंध ब्रज पर पहले सोलह बार आक्रमण कर चुका था। उसका सत्रहवाँ आक्रमण संगठित ब्रज पर था। गोकुलपुरी तथा आस-पास के सात सामंतों ने श्रीकृष्ण के कुशल नेतृत्व में जरासंध का मुकाबला किया।

भगवान श्रीकृष्ण को पता चल गया था कि जरासंध की विजय का कारण उसके दो सेनापति—हंस और डिंभक हैं। अतएव उन्होंने इन दो सेनापतियों का कूटनीति से वध कराने का संकल्प किया।

यद्यपि इस 17वीं बार के आक्रमण में भी जरासंध विजयी हुआ, परंतु श्रीकृष्ण ने बलराम द्वारा एक 'राजा हंस' को मरवा दिया तथा समस्त सैनिकों में यह समाचार फैला दिया कि 'हंस सेनापति' मारा गया। इस खबर को सुनकर डिंभक को घोर शोक हुआ और उसने यमुना में कूदकर अपने प्राण दे दिए।

जब अपने भाई की आत्महत्या का समाचार हंस को विदित हुआ, तो उसने भी आत्महत्या कर ली। शोकग्रस्त जरासंध तत्काल मगध लौट गया। इस प्रकार प्रथम कूटनीति से न केवल ब्रज का त्राण ही हुआ, अपितु जरासंध के सैन्यबल की कमर भी टूट गई। श्रीकृष्ण की इसी कूटनीतिक चाल से, आगे महाभारत युद्ध में द्रोणाचार्य की भी मृत्यु कराई गई थी।

श्रीकृष्ण ने इस बार तो ब्रज को बचा लिया, परंतु आगे उसकी रक्षा करना असंभव था। इसलिए वहाँ की सारी संपत्ति को उन्होंने अपने बंधुओं में बाँट दिया। उनको अपने साथ सौराष्ट्र पलायन करने के लिए सहमत भी कर लिया। नए क्षेत्र में जाकर भी कृष्ण जरासंध की शत्रुता को न भूल सके। उनका स्वयं का खेमा जरासंध से लोहा लेने में असमर्थ था, अत: उन्होंने इस कार्य में भी व्यवहार-बुद्धि से काम लिया।

उन्होंने अजेय योद्धागण पांडवों को इस कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त समझकर, उनको जरासंध से लड़ाने का निश्चय कर लिया। जब राजसूय यज्ञ के लिए पांडवों को ऋषि-मुनियों द्वारा प्रेरित किया जा रहा था, तब कृष्ण ने इसे उपयुक्त अवसर जानकर उनको यह यज्ञ करने के लिए पूरा-पूरा प्रोत्साहन दिया।

राजसूय यज्ञ में देश के सारे राजाओं पर विजय प्राप्त करना अभीष्ट होता है, अत: पांडवगण इस हेतु तैयार नहीं हो रहे थे। युधिष्ठिर तो इसके लिए बिलकुल भी तैयार नहीं थे। तब श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को न केवल सम्राट पद पर प्रतिष्ठित किए जाने का महत्त्व समझाया अपितु इसे क्षत्रियोचित कर्त्तव्य बताकर, इस धार्मिक अनुष्ठान को करने के बाद ब्रह्मलोक की प्राप्ति का आधार भी बताया।

युधिष्ठिर फिर भी सहमत न हुए। तब कृष्ण ने भीमसेन को इस कार्य हेतु राजी कर लिया। भीमसेन कृष्ण की बातों में आ गए और शर्त यह ठहरी की यदि युद्ध होता है, तो उसमें श्रीकृष्ण को भी पांडवों के साथ लड़ना होगा। भीमसेन ने स्वीकार किया कि '**कृष्णे नयो मयं बले जय: प्रार्थे धनं जये**' अर्थात श्रीकृष्ण की नीति, मेरा बल और अर्जुन की वाण शक्ति यदि एकत्रित हो जाए तो फिर चिंता या भय की कोई बात नहीं है।

फिर भी युधिष्ठिर अनमने रहे। अंत में वार्त्ताशिल्पी कृष्ण ने चतुर कूटनीति का दूसरा दाँव फेंका। उन्होंने युधिष्ठिर को डाँटते हुए कहा— "यह ठीक है कि हम सीधे रण-क्षेत्र में राजा जरासंध को नहीं हरा सकते, परंतु बुद्धि और कौशल तो हमारे पास है। यदि हम रणक्षेत्र में न भी जाएँ, तो क्या हमारे पास मृत्यु कभी नहीं आएगी? तो क्या कूटनीति का अवलोकन करना उचित नहीं होगा?" इस बार युधिष्ठिर ने घुटने टेक दिए।

राजसूय यज्ञ के प्रथम चरण में ही सबसे प्रबल राजा जरासंध को हराने के लिए कृष्ण अपने दो सखा—अर्जुन और भीम को लेकर मगध को चल दिए। तीनों ने ब्राह्मण-कुमारों का वेश धारण किया। कार्यसिद्धि के लिए लोक-कल्याण भावना के साथ किए गए कार्यों को अनुचित नहीं ठहराया जा सकता। इस उदात्त भावना से उन्होंने अपने शरीर पर कुश और चीरों को लपेटा।

इस छद्म वेश में वे मगध की राजधानी गिरीवृज के पास चैत्यक नामक पहाड़ी पर पहुँच गए। साधु समझकर उनका किसी ने भी प्रतिरोध नहीं किया। इस पहाड़ी पर सैन्य आक्रमण की सूचना देने के लिए जरासंध के तीन नगाड़े रखे थे। उन्होंने कुशलता से सबसे पहले उन नगाड़ों को फोड़ दिया। फिर कृष्ण नीति ने शत्रु-विनाश के लिए दूसरी कूटनीति का सहारा लिया। उसी नीति से उन्होंने जरासंध का वध करवाया।

यदि कृष्ण में कूटनीति की विपुलता न होती, तो न जरासंध का वध ही हो पाता और न भविष्य में द्यूतक्रीड़ा तथा अन्यायी कुरु शासन की समाप्ति ही होती।

युगों-युगों से लोक-कल्याण की भावना से सत्य और धर्म के हितार्थ निंदित कूटनीति को भी शास्त्रों में धर्म का अंग मानकर लोक-प्रतिष्ठित किया गया है। यही कारण है कि सहस्रों वर्षों के पश्चात भी सोलह कलाओं से युक्त कूटनीतिजनक महान कृष्ण को सारा राष्ट्र बार-बार स्मरण करता रहा है। धर्म की रक्षा के लिए नीतिवान भगवान कृष्ण की भूमिका अविस्मरणीय है। ❑

आजीवन सदस्य कृपया ध्यान दें

आपने जब आजीवन सदस्यता स्वीकार की थी, तब से अब तक महँगाई इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि पत्रिका की आजीवन सदस्यता का निर्वहन कर पाना कठिन हो रहा है। अब पूर्व की सुरक्षानिधि में आजीवन सदस्यता बनाए रखना संभव नहीं जान पड़ता। जो सदस्य रुपये 150 (सन् 1982) में बने थे, उन्हें अभी तक पत्रिका भेजी जा रही है; जबकि वार्षिक चंदा रुपये 15 (सन् 1982) से बढ़कर रुपये 300 हो गया है—भविष्य में और बढ़ता रहेगा। ऐसी स्थिति में आजीवन सदस्यता को पुरानी शर्तों पर जारी नहीं रखा जा सकेगा।

अब नई व्यवस्था के अनुसार आजीवन सदस्यता 20 वर्ष तक सीमित रहेगी। उसका अब चंदा रुपये 6000/- होगा। हम सबकी यही अपेक्षा है कि जो श्रद्धा-स्नेह का संबंध लंबे समय से बना हुआ है, वह और भी प्रगाढ़ होगा। अखण्ड ज्योति का आलोक आपको एवं अन्य परिजनों को आलोकित करता रहेगा।

इसके लिए हम आपके समक्ष निम्न विकल्प प्रस्तुत कर रहे हैं—

(1) आपका आजीवन शुल्क जो भी जमा है, उसे काटकर शेष रुपया और भेज दें, ताकि आपकी आजीवन सदस्यता (20 वर्षीय) बनी रहे। राशि बैंक ड्राफ्ट/चैक/RTGS/NEFT से भेजी जा सकती है। राशि भेजने के लिए बैंकों का विवरण पत्रिका में पृष्ठ सं. 42 पर दिया गया है।

(2) आपकी आजीवन सदस्यता समाप्त कर दी जाए एवं जमा सुरक्षानिधि वार्षिक चंदा में ट्रांसफर कर दी जाए। उस राशि से वार्षिक चंदा रुपये 300/- के हिसाब से जब तक का चंदा बने अखण्ड ज्योति भेज दी जाए।

(3) यदि किन्हीं कारणोंवश ऐसा संभव न हो पा रहा हो तो अपने बैंक खाते की जानकारी भेजने का अनुग्रह करें, जिससे आपको राशि वापस भेजी जा सके। विवरण मिलने पर आपके खाते में सीधे रुपया भेज दिया जाएगा।

पत्र व्यवहार में अपनी सदस्य संख्या, नाम, पता, फोन नंबर, ई-मेल का उल्लेख अवश्य करें।

आप सबको पत्र द्वारा सूचित किया जा चुका है, संभव है किसी कारणवश पत्र न मिला हो। अपनी सहमति का पत्र डाक/ई-मेल द्वारा भेजने का अनुग्रह करें।

—अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा-281003
Email-akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

करें श्रमदेवता की आराधना

आलस्य हमारा सबसे बड़ा निकटतम शत्रु है और एक तरह से सबसे बड़ा अप्रत्यक्ष अपराध भी; क्योंकि इसने जितने बहुमूल्य जीवनों को बरबाद किया है, उतना शायद ही किसी ने किया हो। समाज का भी जितना अहित आलस्य ने किया होगा, उतना बाकी सभी ने मिलकर भी नहीं किया होगा।

अन्य पाप तो दुर्घटना के रूप में आँखों से देखे जा सकते हैं, पकड़ में आ जाते हैं, उनकी प्रतिक्रिया तत्काल होती है और प्रतिरोध की व्यवस्था भी बनाई जा सकती है। जैसे चोरी, हिंसा, बलात्कार आदि, लेकिन आलस्य ऐसा अपराध है, जो हानि अधिक करता है, लेकिन आँखों से दिखता नहीं।

इसलिए लोगों का ध्यान इसकी ओर नहीं जाता और यह पकड़ में भी नहीं आता और इसका कोई दंड भी नहीं मिल पाता। ऐसे में आलस्य अपना काम निरंतर करता रहता है। घुन की तरह अंदर-ही-अंदर से व्यक्ति व समाज को खोखला करता रहता है। परिणामस्वरूप जिन संभावनाओं को लेकर व्यक्ति पैदा हुआ था, वे साकार नहीं हो पातीं।

मानव जीवन तो प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष है। जिसे ईश्वर ने अपनी प्रतिकृति के रूप में बनाकर धरती पर भेजा है, जिसमें सकल संभावनाएँ भरी हुई हैं, जिन्हें यदि जाग्रत किया जा सके तो यह मानव जीवन निहाल हो जाए, लेकिन आलस्यरूपी एक अवगुण इन अनंत संभावनाओं पर तुषाराघात कर देता है। व्यक्ति के जीवन को नाकारा बना देता है और समाज को पिछड़ा एवं प्रतिगामी। जीवन के तमाम अवसर, साधन एवं सुविधाओं के रहते भी ऐसे में व्यक्ति आगे नहीं बढ़ पाता, जबकि श्रम का अवलंबन लिए व्यक्ति तमाम अभाव एवं प्रतिकूलताओं के बीच भी अपना मार्ग निकाल ही लेते हैं।

पग-पग पर ऐसे व्यक्तियों के अनगिनत उदाहरण देखने को मिलते हैं, जो गई-गुजरी स्थिति में पैदा हुए थे, जिनके घर की आर्थिक व सामाजिक स्थिति ठीक नहीं थी, जिनके आधार पर उनसे कोई बड़ी आशा नहीं की जा सकती थी, लेकिन अपने अथक श्रम और प्रचंड पुरुषार्थ के बल पर वे निर्धारित लक्ष्य की ओर तीव्रता से आगे बढ़े और अभीष्ट फल को प्राप्त कर सके।

इनकी प्रगति-उन्नति के पीछे एक ही साधना का प्रभाव रहा, जो था परिश्रम। जिसके बल पर इन्होंने अपनी पिछड़ी स्थिति के बावजूद चमत्कारिक सफलताएँ प्राप्त कीं और अपने साथियों को कोसों पीछे छोड़ते हुए अपनी श्रेष्ठता को सिद्ध करने में समर्थ हुए।

कई लोगों में ऐसी जन्मजात विशेषताएँ व प्रतिभाएँ पाई जाती हैं। इनकी शारीरिक व मानसिक क्षमता दूसरों से अधिक होती है, जिसके आधार पर वे जल्दी और अधिक सफलता प्राप्त कर लेते हैं। इन्हें देखकर ईश्वर पर पक्षपात करने का आरोप लग सकता है, लेकिन यह उनके पूर्वजन्म के परिश्रम का फल होता है, जो जन्मजात संस्कार के रूप में इस जन्म में अनायास ही उपलब्ध होने जैसा दिखता है।

इस तरह परिश्रम ऐसी साधना है, जिसका फल कभी निष्फल नहीं जाता। आज नहीं तो कल वह फलित अवश्य होता है, जन्म-जन्मों तक इसका प्रभाव रहता है। परिस्थितिवश चाही हुई दिशा में, निर्धारित समय में यदि अमुक सफलता न भी मिले, तो भी व्यक्ति की प्रतिभा एवं मनीषा अन्य की तुलना में श्रेष्ठतर रहती है और वह दूसरों से अधिक सफल सिद्ध होता है और अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने में सक्षम होता है।

जीवन में दरिद्रता-दुर्बलता और कुछ नहीं, व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक आलस्य का ही परिणाम हैं। जिस वस्तु का समुचित उपयोग नहीं होता, वह अपनी विशेषता खो बैठती है। श्रम से वंचित शरीर अपनी स्फूर्ति, तेजस्विता और बलिष्ठता खो बैठता है।

आरामतलब व्यक्ति की जीवनीशक्ति दिन प्रतिदिन क्षीण होती जाती है। उसकी सरदी-गरमी और रोगों का सामना करने की सामर्थ्य कम होती जाती है। कालांतर में विषमता के छोटे-मोटे आक्रमण उसके जीवट व संतुलन पर भारी पड़ने लगते हैं।

शरीर के रोगी होने के साथ मन का भी रोगी होना स्वाभाविक है। आलसी शरीर की बुद्धि भी कुंद रहती है। उसके सोचने, निर्णय लेने की, निष्कर्ष तक पहुँचने की क्षमता घट जाती है। ऐसा दुर्बल मन छोटी-छोटी उलझनों में ही उलझा रहता है, इससे किन्हीं बड़े कार्यों की अपेक्षा नहीं की जा सकती, जहाँ उच्च साहस, कर्मठता एवं त्याग-बलिदान की आवश्यकता रहती है। ऐसे व्यक्ति को चारों ओर उलझनों का जाल-जंजाल ही बिखरा हुआ मालूम होता है और जीवन एक प्रत्यक्ष बोझ, समस्या एवं उलझन-सा प्रतीत होता है।

आलसी एक प्रकार का जीवित मृतक ही होता है, इसे आत्महत्यारा कहा जा सकता है। ईश्वर ने व्यक्ति को जो संभावनाएँ दी थीं, वे इस एक छोटी-सी मानसिक दुर्बलता के कारण अस्त-व्यस्त हो जाती हैं। साथ ही आलस्य एक संक्रामक एवं घृणित बीमारी की तरह फैलता है व दूसरों को भी अपने प्रभाव-क्षेत्र में लेकर उनको भी नाकारा बना देता है।

आज देश-समाज में इस स्थिति को व्यापक स्तर पर देखा जा सकता है। लोग श्रम नहीं करना चाहते। बिना श्रम की छोटी-मोटी सरकारी नौकरी में इस बहुमूल्य जीवन को झोंकने को तैयार रहते हैं। बैठे-बिठाए, आराम से ठाठ-बाट की जिंदगी अधिकांश लोगों की आदर्श बनी हुई है। ऐसी मानसिकता का व्यापक प्रभाव समाज व समूह-समुदाय पर भी पड़ता है और श्रम को हेय दृष्टि से देखा जाता है।

जबकि जहाँ श्रम का सम्मान होता है वहाँ व्यक्ति के साथ राष्ट्र एवं समाज भी उन्नत होता है। श्रम एक प्रत्यक्ष देवता है। जिस समाज में इसका सम्मान होता है, वहाँ लोगों को आगे बढ़ते देखा जा सकता है। सफलता, समृद्धि और खुशहाली को उनके आँगन में लहलहाते देखा जा सकता है।

यूरोप, अमेरिका और जापान सरीखे देशों ने आज विकसित देश होने का जो तमगा हासिल किया है, उसके पीछे दीर्घकालीन अथक श्रम की महिमा रही है। वहाँ किसी काम को छोटा-बड़ा नहीं माना जाता। जीवनपर्यंत श्रमशील जीवन जीने में वहाँ लोग अपनी शान समझते हैं।

दुर्भाग्य से हमारे यहाँ एक तो श्रम की गरिमा का अभाव देखा जाता है, दूसरा सेवानिवृत्त होने के बाद अधिकांशतः व्यक्ति हताश हो जाते हैं कि अब करने के लिए क्या शेष बचा है। उन्हें लगता है कि अब तो हमारी इतनी आयु बीत गई, अधेड़ हो गए या बुढ़ापा आ गया, अब कोई बड़ा काम नहीं हो

सकता; जबकि ऐसी निराशावादी विचारधारा अध्यात्मवादी सोच के सर्वथा विरुद्ध है।

अभी भी देरी नहीं हुई है। यदि किसी कारणवश आलस्य-प्रमाद में समय यों ही बरबाद होता रहा, मनोवांछित सफलता हासिल नहीं हो पाई, तो भी निराश होने की आवश्यकता नहीं। श्रमदेवता का अवगाहन कर जीवन को नए सिरे से सँवारा जा सकता है।

आचार्य विनोबा भावे का जीवन इस संदर्भ में प्रकाशस्तंभ की भाँति एक जीवंत मिसाल रहा है। वे आजीवन तन-मन से परिश्रम में संलग्न रहे। औपचारिक स्कूली शिक्षा अल्प होने के बावजूद, वैयक्तिक अध्ययन के आधार पर उन्होंने विश्व की प्राय: सभी प्रमुख भाषाओं और विचारधाराओं पर अधिकार प्राप्त कर लिया था, जिसके चलते विश्व के गिने-चुने मनीषियों में उनकी गिनती होती थी।

उनकी इस अभूतपूर्व प्रतिभा, योग्यता एवं सफलता के पीछे कोई चमत्कार नहीं था, बल्कि उनका अनवरत पुरुषार्थ और मनोयोगपूर्वक किया हुआ श्रम ही था और यह राजमार्ग सबके लिए खुला हुआ है। दो घंटे नित्य अध्ययन कर कोई भी व्यक्ति तीस वर्ष में विश्व की समस्त प्रमुख भाषाओं का विद्वान बन सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का जीवन श्रमदेवता की आराधना को समर्पित जीवन रहा। 3400 से ज्यादा पुस्तकों की रचना का अतिमानवीय पुरुषार्थ रहा हो अथवा मत्स्यावताररूपी गायत्री परिवार की स्थापना का महती कार्य—इसके पीछे उनकी श्रमशीलता की ऊर्जा ही अबाध रूप से कार्य करती रही।

अत: हम भी समयरूपी ईश्वरप्रदत्त पूँजी के महत्त्व को समझें। समय के एक-एक पल का सदुपयोग करें। समय को न गँवाएँ। कहा गया है, कि जो समय को बरबाद करता है, कालांतर में समय उस आलसी व लापरवाह व्यक्ति को बरबाद कर देता है। अत: श्रमदेवता की उपासना करें, समय की साधना करें। समय का यह सम्मान ही काल की आराधना है, यही महाकाल की उपासना है और खाली चिह्नपूजा के साथ की गई पूजा-उपासना, समय-सदुपयोग के अभाव में अधूरी ही मानी जाएगी।

अत: आलस्य को त्यागें, समय रहते शरीर के लिए समय दें, उसे स्वस्थ बनाएँ। बौद्धिक विकास के लिए नित्य अध्ययन से लेकर चिंतन-मनन का समय निकालें और बुद्धि को धार दें। अपने मानसिक क्षितिज को विकसित करें तथा ज्ञानवान बनें। जीवन में आवश्यक कौशल के विकास के लिए भी नित्य कुछ समय निकालें। इस तरह शरीर, मन और बुद्धि को श्रम की भट्ठी में तपाते हुए, आलस्य को पास न फटकने दें। जीवन के हर स्तर पर आलस्य को भगाते हुए एक सक्रिय, कर्मठ जीवन जिएँ और समाज का एक चैतन्य घटक बनकर इस जीवन को सार्थक बनाएँ। ❑

शरीर ने आत्मा से कहा—''देखो! मैं कितना सुंदर, आकर्षक व बलवान हूँ।'' आत्मा बोली—''तुम अपनी अपेक्षा मुझे अधिक सुंदर, आकर्षक बना दो तो तुम्हारे क्षणिक गुण मेरे पास आकर शाश्वत हो जाएँगे।''

शरीर ने बात सुनकर भी अनसुनी कर दी। देखते-देखते जीवन समाप्त हो गया। शरीर रोगी व कृशकाय हो गया। मृत्यु की घड़ी में आत्मा बोली—''तुमने मुझे कुरूप तथा निर्बल रहने दिया। तुमने आत्मतत्त्व को विकसित करने में शक्ति लगाई होती तो मेरे साथ तुम्हारा भी कल्याण हो गया होता।'' पर अब तक बहुत देर हो चुकी थी। मनुष्य जन्म-जन्मांतरों से यही भूल दोहराता चला आ रहा है।

भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

आज विश्व जिस दौर से गुजर रहा है, इसमें भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता बढ़ गई है। वैश्वीकरण ने पूरे विश्व को एक ग्राम का रूप दे दिया है, साथ ही संचार-क्रांति ने जीवन को सरल बनाने के साथ आंतरिक रूप से जटिल बना दिया है। इनके चलते जिन समस्याओं का अंबार मानवता के सामने खड़ा हो रहा है, इनके समाधान के समस्त भौतिक प्रयास निष्फल हो रहे हैं। सांस्कृतिक आधार पर इन पर विचार किया जाना अभीष्ट हो जाता है, जिसमें भारतीय संस्कृति प्रधान है।

मोटे तौर पर संस्कृति किसी देश, समाज या राष्ट्र के निवास करने वाले मानव समुदाय के तौर-तरीके, रीति-रिवाज, धर्म, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान संबंधित क्रियाकलाप तथा कला, साहित्य, आदर्श संस्कार आदि के समुच्चय को कहते हैं। पश्चिमी विद्वान ह्वाइट के अनुसार संस्कृति एक प्रतीकात्मक, निरंतर एवं प्रगतिशील प्रक्रिया है। एक दूसरे विद्वान ई0बी0 टेलर के विचार में संस्कृति ज्ञान, कला, नैतिक कानून, परंपराएँ, धार्मिक विश्वास आदि का सम्मिलित स्वरूप है, जिसे मनुष्य, समाज के सदस्य होने के नाते सीखता है।

श्री कन्हैयालाल माणिक मुंशी के शब्दों में—संस्कृति जीवन की उन अवस्थाओं का नाम है, जो मनुष्य के अंदर व्यवहार, लगन और विवेक पैदा करती है, मानवीय व्यवहारों को निश्चित करती है, उनके जीवन के आदर्श और सिद्धांतों को प्रकाश प्रदान करती है। श्री जवाहरलाल नेहरू के अनुसार—संस्कृति का अर्थ मनुष्य का आंतरिक विकास और उन्नति है, पारस्परिक सद्व्यवहार है और एकदूसरे को समझने की शक्ति है।

इस तरह संस्कृति से आशय मानव की मानसिक, नैतिक, भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं कलात्मक जीवन की समस्त उपलब्धियों की समग्रता से है। परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में, मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने वाला विज्ञान और विधान ही संस्कृति है, जिससे मनुष्य संस्कारवान बनता है तथा मानवीय चेतना का परिष्कार होता है। संभवतः यही वह विशेषता है, जिसके कारण विश्व इतिहास में भारतीय संस्कृति का एक विशिष्ट स्थान एवं महत्त्व रहा और आज भी है।

भारतीय संस्कृति की कई विशेषताएँ हैं, जो इसे दूसरी संस्कृतियों से भिन्न, श्रेष्ठ दरजा देती हैं। आध्यात्मिकता इसकी सबसे प्रमुख विशेषता है। यह आत्मा को अजर, अमर, अविनाशी मानती है, जिसका किसी भी काल में क्षरण नहीं होता। यह आत्मसाक्षात्कार, आत्मबोध, ईश्वरप्राप्ति जैसी अवस्था को मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य मानती है और इसी आधार पर मानव को ईश्वर का वरिष्ठ राजकुमार मानती हुई, उसे शेष प्राणियों की रक्षा एवं पालन का दायित्व भी सौंपती है। अध्यात्म-निष्ठा ही समस्त मूल्यों का स्रोत है, जिसके कारण भारतीय संस्कृति को एक सार्वभौम, कालजयी संस्कृति एवं विश्व संस्कृति का दरजा प्राप्त है।

भारतीय संस्कृति प्राचीनतम है, जिसका ग्रंथ ऋग्वेद सबसे पुरानी मानवीय रचना माना जाता है।

यूनान, सुमेर, रोम, बेबीलोन जैसी विश्वभर में कितनी संस्कृतियाँ पनपीं, लेकिन विलीन होती गईं, जिनके अवशेषमात्र अब शेष हैं; जबकि भारतीय संस्कृति, जो हजारों वर्ष पूर्व अस्तित्व में आई, आज भी विद्यमान है। '**सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा**' के रूप में वेद इसी पुरातनता का उद्‍घोष करता है। जब दूसरे देशों की सभ्यताएँ एवं संस्कृतियाँ घुटनों के बल चल रही थीं, उस समय भारतीय संस्कृति अपनी प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हो चुकी थी।

निरंतरता इसकी अन्य विशेषता है। विश्व में कई संस्कृतियाँ पनपीं, लेकिन आज अधिकांश का नामोनिशान भी नहीं बचा है, जबकि भारतीय संस्कृति जीवंत, जाग्रत और प्रवाहमान है, लोकजीवन में जगमगा रही है। विदेशी आक्रांताओं के कितने आघात इसने सहे, लेकिन वे इसे मिटा नहीं सके।

आज भी भारतीय संस्कृति में पुरातन संस्कृति की झलक देखी जा सकती है। इसके रीति-रिवाज से लेकर धर्म, दर्शन, अध्यात्म, काव्य, महाकाव्य, परंपरागत व्यवस्थाएँ, संस्कार मिलकर इसकी गौरव-गाथा व्यक्त करते हैं। सारतौर पर प्राचीन संस्कृति की ज्योति आज भी यहाँ झिलमिला रही है।

भारतीय संस्कृति धर्मप्रधान रही है, शाश्वत सत्य पर आधारित है। ऋत्, सत्य और धर्म जैसे शाश्वत सूत्र ऋषियों ने खोजे, जिस पर यह आधारित है। सद्‍गुणों के समुच्चय के रूप में ईश्वर की परिभाषा इसकी ही विशेषता है। यहाँ धर्म को जीवन का आधार माना गया है, जो व्यक्ति को मोक्ष की ओर ले जाता है, जिसकी झलक भी पाश्चात्य संस्कृति में नहीं मिलती। धर्म के केंद्र में यज्ञरूपी श्रेष्ठ कर्म एवं सद्‍बुद्धि की अधिष्ठात्री शक्ति गायत्री को माना गया है। युगऋषि के शब्दों में ये देव संस्कृति के माता-पिता हैं।

ग्रहणशीलता और खुलापन भारतीय संस्कृति की मौलिक विशेषता है। सत्य के लिए, नए ज्ञान के लिए यह सदैव ग्रहणशील रही है। इसी कारण विदेशी आक्रमण इसे नष्ट नहीं कर पाए, उनके भी श्रेष्ठ तत्त्वों को यह आत्मसात् करती गई। कितने ही बाह्य सांस्कृतिक तत्त्वों का यहाँ आगमन हुआ, जो इसमें समाहित होकर एकाकार होते गए। इसी ग्रहणशीलता के कारण, इसमें विशालता, व्यापकता एवं विविधता दृश्यगोचर होती है। इसके मूल में सृजन प्रधान रहा है, जिसमें कभी कट्टरता, ध्वंस एवं संकीर्णता जैसे तत्त्वों का कोई स्थान नहीं रहा।

इसी कारण भारतीय संस्कृति उदारता एवं सहिष्णुता जैसे सद्‍गुणों से भरी हुई है। यह दूसरों के प्रति उदार रही है। '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' इसका आधार वाक्य रहा है। इसी कारण कितने सारे धर्म, संप्रदाय, मत-मतांतर यहाँ विराजमान हैं और एकदूसरे के प्रति सहिष्णुता का भाव रखते हैं; जबकि अन्य देशों व संस्कृतियों में दूसरे धर्मों के प्रति असहिष्णुता का अभाव रहता है तथा भीषण संग्राम और रक्तपात से इनके इतिहास के पन्ने सने हुए देखे जा सकते हैं।

वैदिक काल से यहाँ उद्‍घोष होता रहा है कि **एकं सद्‍विप्रा बहुधा वदन्ति**—एक ही सत्य विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। इसलिए भगवान के नाम पर लड़ाई-झगड़ा कैसा। इसी उदार विचारधारा के कारण यहाँ आक्रांताओं तक को आश्रय मिलता रहा।

भारतीय संस्कृति में सर्वांगीणता भरी हुई है, यह समग्र उत्कर्ष की बात करती है। मानवीय चेतना के मर्मज्ञ ऋषियों ने अस्तित्व का बोध कर पुरुषार्थ चतुष्टय, वर्णाश्रम-व्यवस्था आदि की रचना की, जिसमें सर्वांगीण जीवन का प्रावधान है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के रूप में पुरुषार्थ चतुष्टय

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास को सुनिश्चित करते हैं। यहाँ ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम की व्यवस्था क्रमिक रूप में जीवन को पूर्णता की ओर ले जाती है। **सत्यम् शिवम् सुंदरम्** का भाव यहाँ जीवन को सर्वांग सुंदर बनाता है।

कर्म-सिद्धांत भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता रही है, जो व्यक्ति को पुरुषार्थी बनाती है, भाग्यवाद से बाहर उबारती है। यहाँ मरणोत्तर जीवन अस्तित्व का अकाट्य सत्य है और साथ ही यह भाव भी कि कर्म का फल अवश्य मिलता है, जिसमें जन्म-जन्मांतरों का हिसाब रहता है। संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध कर्मों के आधार पर मनुष्य का जीवन संचालित होता है। इसी कारण पुनर्जन्म होता है, कर्म के आधार पर ही जन्मों के अंतहीन कुचक्र से बाहर निकलने का मार्ग निर्दिष्ट होता है। वर्तमान कर्म के आधार पर भविष्य का सुधार किया जा सकता है, जीवन को मनोवांछित दिशा दी जा सकती है।

विविधता में एकता इसकी एक अन्य विशेषता है, जिसमें सभी के लिए स्थान है। आश्चर्य नहीं कि विभिन्न जाति, समुदायों, भाषा, धर्म के लोग यहाँ एक साथ शांति के साथ विचरण करते रहे हैं। किसी ने सही कहा है कि भारत विभिन्न प्रकार के समुदायों, रीति-रिवाजों, धर्मों, संस्कृतियों, भाषाओं, विश्वासों तथा सामाजिक व्यवस्थाओं का एक संग्रहालय है। इतनी विविधताओं के बावजूद यहाँ लोग एकता के सूत्र में बँधे हुए हैं। यहाँ हिंदू, जैन, बौद्ध, ईसाई, मुस्लिम, पारसी, यहूदी सभी धर्मों के लोग मिलते हैं।

शांति-अहिंसा, प्रेम-सद्भावना तथा विश्व-बंधुत्व भारतीय संस्कृति की मौलिक विशेषताएँ हैं। इसमें **वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वेभवन्तु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः** का भाव अंतर्निहित है। इसी कारण प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता तथा जीव-जंतुओं एवं प्राणिमात्र के प्रति दया का भाव इसमें सहज रूप से विद्यमान है। आज जब वैश्वीकरण ने पूरे विश्व को एक परिवार में बदल दिया है, लेकिन दिलों की दूरियाँ बढ़ रही हैं, हिंसा व अशांति का बोलबाला है, तो ऐसे में भारतीय संस्कृति की वर्णित विशेषताएँ पूरे विश्व का मार्गदर्शन करती हैं।

इन्हीं विशेषताओं के कारण भारतीय संस्कृति प्राचीनतम होते हुए भी आज भी जीवंत है और निरंतर गतिशील है। इसकी उपरोक्त वर्णित विशेषताओं के आधार पर पूरा विश्व आशाभरी निगाहों से इसकी ओर देख रहा है। इसमें वे सारे सूत्र विद्यमान हैं, जिनके आधार पर वर्तमान समस्याओं के समाधान संभव हैं। हिंसा, आतंक, द्वेष, विषमता के साए में जी रही मानवता के लिए भारतीय संस्कृति आशा की किरण है और समाधान का प्रकाशस्तंभ भी। ❑

भगवान बुद्ध समाधिस्थ थे। ऊपर आसमान में मेघ घिर आए और भयंकर वर्षा प्रारंभ हो गई। भगवान बुद्ध भीग न जाएँ इसलिए सर्पराज मुचलिंद ने भगवान के शरीर को सब तरफ से लपेटा और फिर अपने फनों का छत्र उनके सिर पर तैनात कर दिया। जब वर्षा रुकी तब लोगों का आवागमन पुनः शुरू हुआ। लोगों को आता जानकर सर्पराज ने अपनी पकड़ ढीली की और जंगल की ओर चले गए। राहगीरों ने बुद्ध से प्रश्न किया—''प्रभु! सर्पराज ने आपको किसी तरह का नुकसान तो नहीं पहुँचाया।'' बुद्ध मुस्कराए और बोले—''बंधु! जो संसार के सभी प्राणियों में उसी परमात्मा का दर्शन करता है, जो सृष्टि का नियंता है, उसका भला कौन बुरा कर सकता है?''

सुरंगों का अद्भुत संसार

मानवीय इतिहास में सुरंगों का अपना विशेष स्थान रहा है। प्रारंभ में आदिमानव गुफाओं में रहता था, जिसका विस्तार आगे सुरंगों के रूप में हुआ। क्रमिक रूप से उसने समूह में जीना सीखा। फिर कबीलाई जीवन से राजशाही जीवन में प्रवेश हुआ एवं क्रमशः सुरक्षा की आवश्यकताएँ बढ़ती गईं और सुरंगों के निर्माण में नए आयाम जुड़ते गए। प्रायः छिपकर निकलने या किसी खुफिया कार्य के लिए इनका उपयोग होता रहा।

इस तरह प्राचीनकाल से राजा-महाराजा आपात स्थिति में बाहर निकलने के लिए अपने महलों व किलों में गुप्त मार्गों का निर्माण किया करते थे, जिससे वे किसी विषम परिस्थिति में स्वयं व परिवार की रक्षा कर सकें। युद्धों में खासकर इनकी विशेष उपयोगिता रहती थी। छत्रपति शिवाजी महाराज का दौर गुरिल्ला युद्ध के लिए प्रख्यात रहा है, जिसके माध्यम से उन्होंने शक्तिशाली मुगल साम्राज्य को नाकों चने चबाए थे। इस युद्धकला में सुरंगों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता था।

विश्वयुद्धों के दौरान सुरंगों का भरपूर उपयोग हुआ। इसी तरह अमेरिका-वियतनाम युद्ध में इनका खुलकर उपयोग हुआ था, जिसके कारण वियतनाम जैसा छोटा-सा देश अमेरिका जैसी महाशक्ति के लिए एक चुनौती बन गया था। आज भी ये सुरंगें विराजमान हैं, जो पर्यटन के उद्देश्य के लिए उपयोग की जाती हैं। अभी चल रहे इजराइल-हमास संघर्ष में भी सुरंगों का इस्तेमाल होते देखा जा सकता है।

अपने ही देश में कई तरह की सुरंगें चर्चा का विषय रही हैं। हाल ही में दिल्ली विधानसभा को लाल किले से जोड़ने वाली गुप्त सुरंग का पता चला है। संभवतः विभिन्न स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने ब्रिटिश काल में उनके अत्याचार से बचने के लिए इसका उपयोग किया हो।

सुरंगों व गुप्त मार्ग के कारण ही लाल किले को बहुत ही रहस्यमयी स्थल माना जाता है। यह 17वीं शताब्दी में शाहजहाँ द्वारा बनाया गया था, जहाँ प्रधानमंत्री हर वर्ष स्वतंत्रता दिवस पर भाषण देते हैं। इसे कई सुरंगों और गुप्त मार्गों का घर कहा जाता है। इसमें एक गुप्त सुरंग ऐसी भी है, जो इसे यमुना नदी से जोड़ती है।

भारत के दक्षिण भारत में केरल के तिरुवनंतपुरम् में स्थित पद्मनाभास्वामी मंदिर अपनी वास्तुकला, दरवाजों और कमरों के साथ गुप्त सुरंगों के लिए भी प्रख्यात है। वर्ष 2011 में शाही परिवार द्वारा मंदिर की संपत्ति के कुप्रबंधन को लेकर लगाए गए आरोपों के आधार पर जब जाँच की गई तो इसमें 6 तहखाने मिले, जिनमें 22 अरब डॉलर मूल्य की सोने की मूर्तियाँ व अन्य खजाने के सिक्के पाए गए। यहाँ किंवदंतियों के अनुसार-एक ऐसा कमरा भी है, जो कभी खोला नहीं गया; क्योंकि यदि इसे खोला गया, तो प्राकृतिक आपदा आ सकती है।

हैदराबाद स्थित दो सबसे बड़े स्मारक, चारमीनार और गोलकुंडा किला, एक छिपी हुई सुरंग से आपस में जुड़े हुए हैं। सन् 2015 में कुछ

दस्तावेज मिले थे। जो 9 किलोमीटर लंबी एक सुरंग की चर्चा करते हैं, लेकिन लापरवाही के कारण वह नष्ट हो गई थी। इसी तरह असम के तलातल घर, रंगपुर पैलेस का एक भाग, ताई अहोम वास्तुकला के शानदार उदाहरणों में से एक हैं, जहाँ दो गुप्त सुरंगों का वर्णन आता है। इनमें से एक 3 किलोमीटर लंबी है, जो डिखो नदी से जुड़ती है तथा दूसरी 16 किलोमीटर लंबी है, जो गढ़गाँव पैलेस की ओर जाती है। इन सुरंगों का उपयोग अहोम राजाओं द्वारा युद्धों के दौरान बचाव मार्ग के रूप में किया जाता था।

अंबर पैलेस जयपुर, आमेर किला या अंबर किला कहा जाता है। इस किले को जयगढ़ किले से जोड़ने वाली एक सुरंग है, जो लगभग 7 किलोमीटर लंबी है, जिसे 18वीं शताब्दी में बनाया गया था, इसका उद्घाटन 2011 में एक पर्यटन स्थल के रूप में किया गया था।

जम्मू में परगवाल सुरंग की खोज भारतीय सेना ने वर्ष 2014 में की थी, जो 20 फीट गहरी है, जिसका अभी तक कोई छोर नहीं मिला है। सीमा पार से घुसपैठियों द्वारा इसका उपयोग किया जाता था।

सुरंगों के इन खुफिया स्वरूपों के अतिरिक्त आज ये विकास की मिसाल भी बन चुकी हैं, जिनमें इंजीनियरिंग की अद्यतन तकनीकों का कमाल देखा जा सकता है। गगनचुंबी पर्वतों से लेकर सागर की गहराइयों में जिस कुशलता के साथ सुरंगों का निर्माण हो रहा है, इसकी पूर्व में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

ब्रिटेन और फ्रांस को जोड़ने वाली चैनल टनल, एक ऐसी ही मिसाल है। यह सागर में बनाई गई विश्व की सबसे लंबी सुरंग है, इसकी लंबाई लगभग 50 किलोमीटर है। यह इंग्लिश चैनल से होकर गुजरती है। सागर के अंदर इससे होकर प्रतिवर्ष लगभग एक करोड़ लोग गुजरते हैं। सुरंग में चलने वाली रेलगाड़ी के माध्यम से हर वर्ष लगभग 16 लाख गाड़ियाँ ब्रिटेन और फ्रांस के बीच आती-जाती हैं। माना जाता है कि फ्रांस और इंग्लिश चैनल को समुद्री मार्ग से जोड़ने का सपना पहलेपहल नैपोलियन बोनापार्ट ने देखा था, लेकिन तब विज्ञान-प्रौद्योगिकी इतनी उन्नत नहीं थी कि इसे समय रहते अंजाम दे सके।

भारत की सबसे लंबी सुरंग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी सुरंग है, जो जम्मू-श्रीनगर राष्ट्रीय राजमार्ग पर है। इसकी लंबाई 9.34 किलोमीटर है, जिसके चलते चेनानी और नाश्री के बीच 41 किलोमीटर की दूरी मात्र 10.9 किलोमीटर रह गई है। इसे विकास की दृष्टि से शीर्ष उपलब्धि कहा गया है, विशेषकर बरफबारी और बारिश के प्रतिकूल मौसम को देखते हुए।

साथ ही जम्मू-कश्मीर में पर्यटन को बढ़ावा देने और आर्थिक समृद्धि में यह एक महत्त्वपूर्ण घटक सिद्ध हुई है। यह सुरंग 286 किलोमीटर जम्मू-श्रीनगर फोरलेन राष्ट्रीय राजमार्ग का हिस्सा है, जिससे जम्मू से श्रीनगर की यात्रा अढ़ाई घंटे कम हो गई है।

इसी तरह अक्टूबर 2020 में तैयार अटल टनल लगभग 9.02 किलोमीटर लंबाई लिए हुए है, जिसे सबसे अधिक ऊँचाई पर बनी सबसे लंबी सुरंग माना जाता है। इसके चलते लाहौल-स्फिति जैसे दुर्गम क्षेत्र तक पहुँच सरल हो गई है, जो वर्ष के छह माह बाहरी दुनिया से कटा रहता था। इसके साथ मनाली—लेह यात्रा का समय भी 4 घंटे कम हो गया है।

जब सुरंगों की बात हो रही हो तो कालका से शिमला के बीच बने रेलवे मार्ग पर बनी सुरंगों को

नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। कुल 107 सुरंगों के साथ ब्रिटिश शासन काल में इस ऐतिहासिक रेल मार्ग का निर्माण हुआ था, जब विज्ञान इतना विकसित नहीं था। यह भी अपने समय में इंजीनियरिंग की एक मिसाल थी, जो अभी तक सुरक्षित है। इनमें 1.1 किलोमीटर लंबी बड़ोग सुरंग सबसे लंबी है।

इन सब सफल प्रयोगों को देखते हुए आज देश में खासकर पहाड़ी क्षेत्रों में कई सुरंग परियोजनाओं पर कार्य चल रहा है। जिसमें ऋषिकेश–कर्णप्रयाग रेलवे प्रमुख है। इस 125 किलोमीटर लंबी रेललाइन पर कार्य प्रगति पर है। इसमें कुल 17 सुरंगें हैं, जिनमें देवप्रयाग के पास सबसे लंबी लगभग 15 किलोमीटर लंबी सुरंग निर्माणाधीन है। इस ट्रेक पर 104 किलोमीटर दूरी सुरंगों से ही तय होगी।

पिछले महीनों उत्तराखंड के उत्तरकाशी जनपद में गंगोत्तरी व यमुनोत्तरी तीर्थ मार्ग को जोड़ने वाली सुरंग पर्याप्त चर्चा में रही, जहाँ 41 श्रमिक अंदर फँस गए थे। 17 दिन से अधिक के अथक प्रयास के बाद इनको बाहर निकालने में सफलता मिली। हालाँकि यह मानवीय चूक के कारण हुई दुर्घटना थी, जिससे आवश्यक सबक संभवत: लिए जा चुके हैं।

मूलत: सुरंगों को पर्यावरण की दृष्टि से उपयुक्त माना जा रहा है। एक तो इनसे भूमि के स्तर पर न्यूनतम छेड़छाड़ होती है, वृक्षों का कटाव न्यून रहता है और लंबे समय तक ये टिकाऊ भी रहती हैं। दूरी को कम करने का मूल मकसद भी इनके साथ पूरा होता है। यदि सावधानीपूर्वक इनका निर्माण किया जाए तो ये मानव हित में हैं। ❑

राजा भोज ने युद्ध में विजय के उपलक्ष्य में सारे नगर को भोज दिया। नाना प्रकार के व्यंजन इसमें बनाए व परोसे गए। खाने वालों ने राजा भोज की उदारता की भरपूर प्रशंसा की, जिसे सुनकर राजा भोज का सिर अहंकार से ऊपर उठ गया और अधिक प्रशंसा सुनने के उद्देश्य से वे वेश बदलकर नगर-भ्रमण को निकले।

मार्ग में उन्हें एक लकड़हारा मिला, जो अपने कंधे पर लकड़ियों का एक बड़ा गट्ठर लिए चला जा रहा था। राजा भोज उसे रोककर बोले—"क्यों भाई! आज के दिन तो राजा ने बड़ा भोज दिया था, फिर इतनी ज्यादा मेहनत किसलिए कर रहे हो ? क्या तुम्हें भोज का आमंत्रण नहीं मिला था ?" सुनकर लकड़हारा बोला—"नहीं भाई! निमंत्रण तो मिला था, पर मैंने सोचा कि यदि बिना परिश्रम खाने की आदत पड़ गई तो जीवन भर ऐसे ही निमंत्रणों की प्रतीक्षा करता रहूँगा और परिश्रम करने की प्रवृत्ति गँवा बैठूँगा। आत्मगौरव अपने परिश्रम का खाने में ही है, दूसरों की प्रदत्त सहायता में नहीं।"

राजा भोज का अहंकार लकड़हारे की बात सुनकर विगलित हो गया, पर साथ ही उन्हें गर्वानुभूति भी हुई कि उनके राज्य में इतने नैष्ठिक नागरिक भी निवास करते हैं।

यह सत्य है या वह सत्य है

यह कहानी बहुत पुरानी है। ''मिथिलानरेश जनक बड़े ही धार्मिक व राज-काज में निपुण थे। धर्मपरायण होने के कारण वे राज-काज का संचालन बड़ी कुशलतापूर्वक किया करते थे। अत: उनके राज्य में प्रजा हर प्रकार से खुशहाल थी। उनकी लोकप्रियता दूर-दूर तक फैली हुई थी। उनके दरबार में संतों, ज्ञानियों का बड़ा आदर हुआ करता था। वे संतों, मुनियों के साथ अक्सर धर्म-चर्चा आयोजित किया करते थे। धर्मपरायण होने के कारण वे राजा होते हुए भी राजवैभव के प्रति आसक्ति नहीं रखते थे।

''वे भगवत्परायण जीवन जीते हुए अपना सारा वैभव भगवान का ही मानकर बस माया, मोह व आसक्ति से परे रहकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया करते थे। वे संसार में होकर भी संसार के प्रति कोई आसक्ति नहीं रखते थे। वे निष्काम कर्म करते हुए बस राजा के रूप में अपने कर्त्तव्यों का बड़े ही कुशलतापूर्वक पालन करते थे। इसलिए वे बड़े लोकप्रिय हुए और आदर्श राजा कहलाए।

''एक बार राजा जनक गाढ़ी निद्रा में सो रहे थे, तभी उन्होंने एक विचित्र स्वप्न देखा। उन्होंने देखा कि एक शक्तिशाली राजा ने उनके राज्य पर हमला कर दिया है और पूरा राज्य तहस-नहस कर दिया है। यहाँ तक कि उन्हें भी अपनी जान बचाने के लिए जंगलों में भाग जाना पड़ा। वे कई दिनों तक जंगल में भूखे-प्यासे पड़े रहे। उनके हाल पर तरस खाकर उस जंगल से गुजर रहे एक राहगीर ने उन्हें खाने को एक रोटी दी।

''अभी वे एक वृक्ष के नीचे बैठकर रोटी खाने ही वाले थे कि एक विशाल कौआ झपट्टा मारकर उनके हाथ से रोटी ले उड़ा। यह देखकर राजा जनक चीख पड़े और आकाश में रोटी लेकर उड़ते हुए उस कौए को देखने लगे, तभी उनकी निद्रा भंग हो गई। निद्रा से जागते ही उन्होंने स्वयं को अपने ही राजमहल के अपने शयन कक्ष में बिस्तर पर पसीने से लथपथ पाया। यह देखकर जनक विचारशून्य हो गए।

''चूँकि वे आध्यात्मिक मनोभाव के व्यक्ति थे, इसलिए वे उस स्वप्न के निहितार्थ पर विचार करने लगे कि इस स्वप्न का क्या अर्थ हो सकता है? इसका क्या तात्पर्य हो सकता है? क्या यह स्वप्न किसी सत्य की ओर इशारा कर रहा है? आदि प्रश्न उनके मन में उठने लगे। वे यह सोचने लगे कि जब मैं स्वप्न देख रहा था तब तो मैं अपने राजमहल में ही अपने शयनकक्ष में था, लेकिन मन पूरी तरह जंगलों में भटक रहा था। मैं जंगल में दौड़-भाग कर रहा था। कौआ मेरे हाथ से रोटी ले उड़ा था। मैं चीखा भी था और मैं पसीने से लथपथ भी हो गया था।

''अब प्रश्न यह उठता है कि सत्य क्या है? मैं अपने बिस्तर पर लेटा था, वह सत्य था या मैं युद्ध हारकर जंगलों में भटक रहा था, वह सत्य था। मैं अपने पलंग पर विश्राम कर रहा था, वह सत्य था या मैं पसीने से लथपथ हो गया था, वह सत्य था? राजा जनक अपने स्वप्न के निहितार्थ को समझने का प्रयास कर रहे थे। उन्होंने अपने स्वप्न की चर्चा अपने राजमहल में आए हुए कई विद्वानों

से की, पर उन्हें अपनी जिज्ञासा का सही समाधान नहीं मिल पाया था। तभी उनके राजमहल में महाज्ञानी अष्टावक्र जी का आगमन हुआ।

"राजा जनक ने उनसे भी वही प्रश्न किया, 'महाराज! उस घटना में सच क्या है? यह सच है या वह सच है?' अष्टावक्र ने तुरंत हँसते हुए कहा—'महाराज! न यह सच है, न वह सच है।' जनक तो चौंक गए; क्योंकि अब तक जितने भी लोगों ने उन्हें बताया था, उन्होंने राजा जनक की एक या दूसरी अवस्था को सच बताया था।

"तब अष्टावक्र जी अपनी बात विस्तार से समझाते हुए बोले—'महाराज! जब आप स्वप्न देख रहे थे, तब आप अपने राजमहल में ही थे। उस समय आपका जंगलों में भटकना तो गलत ही हो गया। ठीक वैसे ही जब आप राजमहल में थे तो भी उस समय आपका चित्त तो जंगलों में ही भटक रहा था। अतः उस समय आपका राजमहल में होना भी गलत ही हो गया।'

"जनक को बात समझ में आ गई, लेकिन उन्होंने फिर एक नई जिज्ञासा प्रकट की और अष्टावक्र से पूछा—'तो फिर सच क्या है?' अष्टावक्र बोले—'सत्य वह द्रष्टा है, जो यह सब देख रहा था। आपके अंदर बैठा द्रष्टा सब कुछ देख रहा था, पर उसे आपके राजमहल में होने या स्वप्न में जंगल में होने, इन दोनों ही घटनाओं से कोई मतलब न था। वह द्रष्टा तो उन घटनाओं को देख भर रहा था। वह द्रष्टा तो उन घटनाओं का साक्षी भर था।'

"अष्टावक्र बोले—'जो कुछ घटित हो रहा है, वह सत्य नहीं, बल्कि सत्य वह द्रष्टा है, जो सब कुछ घटित होते हुए देख रहा है और उन्हें देखकर भी उससे निर्लिप्त है, अनासक्त है। उसका उन घटनाओं से कोई लेना-देना ही नहीं है। इसलिए घटने वाली हर सुखद या दुःखद घटनाएँ उस द्रष्टा को न तो सुखी करती हैं न दुःखी करती हैं। इसलिए राजन्, जीवन में द्रष्टा का एहसास कर पाना ही जीवन का उद्देश्य होना चाहिए।'

"अष्टावक्र के ज्ञान से राजा जनक द्रष्टाभाव में स्थित हुए अर्थात उन्हें अपने वास्तविक स्वरूप (आत्मस्वरूप) का बोध हुआ। राजा होते हुए भी राजसी सुख-वैभव के प्रति वे कभी आसक्त नहीं हुए। वे देह में होते हुए भी विदेह कहलाए। वे सुख-दुःख, मान-अपमान, हर्ष-विषाद से परे रहे और आत्मभाव, द्रष्टाभाव में स्थित रहकर अपना राज-काज चलाते रहे।"

सचमुच आत्मज्ञान से ही आत्मदृष्टि विकसित होती है और आत्मदृष्टि संपन्न होना ही द्रष्टा होना है। द्रष्टा की दृष्टि से संसार को देखकर ही हम संसार में रहते हुए संसार से निर्लिप्त रह सकते हैं और सुख-दुःख, मान-सम्मान, हर्ष-विषाद से परे होकर सदैव समत्व की स्थिति में रहते हुए अतींद्रिय आनंद, आत्मिक आनंद की अनुभूति कर सकते हैं। हमें भी द्रष्टाभाव को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। हमें भी द्रष्टाभाव में स्थित रहकर निर्लिप्त और निष्काम भाव से जगत् में अपने कर्त्तव्य कर्म करते हुए सदैव आनंदित रहना चाहिए। द्रष्टाभाव में रहने से ही हमें शाश्वत सुख व आनंद की अनुभूति होती है। ❑

युवैव धर्मशीलः स्यादनित्यं खलु जीवितम्।
को हि जानाति कस्याद्य, मृत्युकालो भविष्यति॥

अर्थात यह जीवन अनित्य है, यह समझकर युवावस्था से ही धर्म का पालन करना चाहिए। मृत्यु का पता नहीं कि कब आ जाए, यह सोचकर पहले से ही धर्म का पालन करते रहना चाहिए।

क्या है सच्ची गुरुभक्ति?

जैसे यह सत्य है कि गुरु ऐसा होना चाहिए जो ब्रह्मनिष्ठ हो, ब्रह्मज्ञानी हो, निर्विकार हो, निरहंकारी हो और समदर्शी हो; वैसे ही यह भी सत्य है कि शिष्य ऐसा होना चाहिए जिसमें गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा हो, भक्ति हो, विश्वास हो, प्रेम हो, जिसके लिए गुरु का रूप ही ध्यान का मूल हो, गुरु के चरण ही पूजा का मूल हों, गुरु का शब्द ही मंत्र का मूल हो, गुरु की कृपा ही मोक्ष का मूल हो, जिसके लिए गुरुप्रदत्त पथ ही वर्णाश्रम-धर्म हो, गुरु-परिचर्या ही नित्य कर्म हो, जिसके लिए गुरुकार्य ही भगवत्कार्य हो, गुरु की सेवा ही भगवद्सेवा हो और जिसके लिए गुरु का आदेश ही ईश्वर का आदेश हो और गुरु के वचन ही शास्त्र-वचन हों।

वास्तव में जो शिष्य उस कसौटी पर खरा उतरता है—उस पर गुरु व भगवान का अनुदान-वरदान अवश्यमेव बरसने लगता है। वह मोक्ष, मुक्ति, आनंद व भगवत्प्राप्ति का अधिकारी बन जाता है। जो वास्तव में इस रूप में शिष्य धर्म निभा पाते हैं; वे अमरपद के अधिकारी हो जाते हैं।

जब साधक में इस रूप में शिष्यत्व का जागरण होता है तब सर्वज्ञ, सर्वव्यापी परमात्मा की कृपा से उसे सहज ही सद्गुरु की प्राप्ति हो जाती है; क्योंकि सद्गुरु कोई और नहीं, वरन सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान भगवान के प्रतिनिधि ही हैं, जो भगवद्इच्छा से संसार के कल्याण के लिए नर रूप धारण किए हुए होते हैं।

ऐसे सद्गुरु भी तो सच्चे, सुपात्र शिष्य को चाहते हैं, जिसे वे अपने ब्रह्मज्ञान का अमृत पिला ईश्वर का साक्षात्कार करा सकें और उसे ईश्वरीय कार्य हेतु भगवान का उपयुक्त यंत्र बना सकें। ऐसे सुपात्र शिष्य को सद्गुरु स्वयं लौहचुंबक के समान अपनी ओर खींच लिया करते हैं।

इसी आधार पर तो श्री गोविंदपाद जी ने आचार्य शंकर को, श्री रामकृष्ण परमहंस ने स्वामी विवेकानंद को, श्री जनार्दन स्वामी ने एकनाथ को, स्वामी विरजानंद ने दयानंद सरस्वती को आकर्षित किया था। इसी आधार पर तो परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने कोटिशः दिव्य आत्माओं को, साधकों को, सुपात्र शिष्यों को अपनी ओर आकर्षित कर उनके जीवन को निहाल कर दिया और उन्हें सही माने में भगवत्कार्य का उपयुक्त यंत्र-उपकरण बनने को प्रेरित किया और उन्हें युगनिर्माण योजना जैसे ईश्वरीय अभियान से जोड़ दिया।

मूल प्रश्न यह नहीं कि सद्गुरु को कहाँ और कैसे पाएँ, बल्कि मूल प्रश्न यह है कि हम सच्चे शिष्य, सच्चे भक्त, सच्चे साधक कैसे बनें? यदि हमें गुरु एवं भगवान की प्राप्ति करनी है तो हमें सुपात्र बनना ही होगा। हमें एक सच्चा शिष्य, एक सच्चा साधक होना ही होगा। हमें एक सच्चा गुरुभक्त, भगवद्भक्त बनना ही होगा। हमें एक सच्चा उपासक, साधक और आराधक होना ही होगा। हमें वह नहीं बनना, जो हम बनना चाहते हैं; बल्कि हमें वह बनना है, जो हमारे गुरु हमें बनाना चाहते हैं।

जब तक हममें अपने अनुसार कुछ बनने की, पाने की, माँगने की इच्छा, आशा, आकांक्षा,

महत्त्वाकांक्षा का लेशमात्र भी शेष है तब तक हम वह बन ही नहीं सकते; जो वास्तव में हमारे गुरु, हमारे भगवान हमें बनाना चाहते हैं या हमें बनते हुए देखना चाहते हैं।

सर्वप्रथम हमें निज इच्छा, आकांक्षा, महत्त्वाकांक्षा को त्यागकर स्वयं को पूर्णत: अपने गुरु, अपने भगवान को समर्पित करना होगा। हमें अपनी इच्छा नहीं, गुरु की, भगवान की इच्छा को धारण करना होगा। हमें उस प्रयोग के लिए तैयार होना होगा, जो हमारे गुरु हमारे साथ करना चाहते हैं। जो हमारे आराध्य, हमारे भगवान हमारे साथ करना चाहते हैं।

एक चिकित्सक या वैद्य के समक्ष कोई रोगी यह नहीं कह सकता कि वैद्य को हमारी चिकित्सा हमारी इच्छा के अनुसार ही करनी होगी। यदि ऐसा हो तो न तो वैद्य रोगी का सही उपचार कर सकता है और न ही रोगी स्वस्थ हो सकता है। गुरुरूपी वैद्य के समक्ष जाकर भी हम यही गुहार लगाते हैं कि हमारे साथ वैसा ही हो, जैसा हम चाहते हैं।

हमारी इच्छा, आकांक्षा, महत्त्वाकांक्षा पूरी होनी ही चाहिए। ऐसा वे इसलिए सोचते हैं कि उन्हें लगता है कि तभी तो हमें यह पता चलेगा कि आप हमारी मनोकामना पूर्ण करने में समर्थ हैं भी या नहीं।

इसलिए कई लोग सद्गुरु के पास रहकर भी उनसे बहुत दूर बने रहते हैं। पारस के पास होकर भी लोहा स्वर्ण नहीं बन पाता। हम ऐसा तभी चाहते हैं, जब हम न तो यह जानते हैं कि हमारा कल्याण किसमें है और न ही यह जानते हैं कि यह सद्गुरु ही भली भाँति जानते हैं कि हमारा कल्याण किसमें है। रोगी का कल्याण किसमें है यह रोगी नहीं जानता, पर वैद्य भली भाँति जानता है।

यह सद्गुरु ही जानते हैं, भगवान ही तो जानते हैं कि हमारे शिष्य की इच्छा, आकांक्षा, महत्त्वाकांक्षा ही उसके मुक्ति, आनंद और आत्मसाक्षात्कार के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है, इसलिए वे हमें सभी प्रकार की इच्छाओं, कामनाओं, आसक्तियों से मुक्त होने का साधन-अभ्यास बताते हैं।

शिष्य के लिए प्रथम शर्त है—अपनी निज इच्छाओं का त्याग कर गुरु के प्रति संपूर्ण समर्पण। अत: हम अविलंब सद्गुरु के बताए साधन-अभ्यास में पूरी तरह जुट जाएँ। हम गुरु के बताए अनुसार नित्य व नियमित रूप से बिना ऊबे, बिना उकताये, बिना संशय-संदेह के अखंड रूप से पूर्ण श्रद्धा-भक्ति के साथ भगवद्ध्यान, भगवद्भजन, स्वाध्याय, सेवा, संयम का अभ्यास करते रहें।

घटावभासको भानुर्घटनाशे न नश्यति।
देहावभासक: साक्षी देहनाशे न नश्यति॥

—*आत्मप्रबोधोपनिषद्*

अर्थात घड़े के भीतर दिखलाई पड़ने वाला सूर्य घड़े का नाश हो जाने पर नष्ट नहीं होता, वैसे ही देह में प्रकाशित आत्मा देह का नाश होने पर नष्ट नहीं होती।

उक्त अभ्यास के प्रभाव से हमारी सारी इच्छाएँ, कामनाएँ, वासनाएँ, आसक्तियाँ एक-एक कर वैसे ही झड़ती जाएँगी, जैसे वृक्ष की डालियों से पुराने पत्ते झड़ते जाते हैं। हमारा चित्त निर्मल, निर्विकार होता जाएगा। ब्रह्म का ध्यान करते-करते हमारा चित्त ब्रह्माकार हो सकेगा और हमें दिव्य ब्रह्मानुभूति, ब्रह्मोपलब्धि हो सकेगी। हम स्वयं को ईश्वर के हाथों का यंत्रमात्र मान कर संसार में हर कार्य को भगवत्कार्य मानकर कर सकेंगे और पल-पल ब्रह्मानंदरस का पान कर सकेंगे।

सचमुच निज इच्छा नहीं, वरन गुरु इच्छा, भगवदिच्छा को धारण करना ही है सच्ची गुरुभक्ति, सच्ची भगवद्भक्ति। ❑

पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा–20

तीन दिव्य उपास्य और उनके तीन महान वरदान

हिमालय उनका दूसरा देवता है। यही है उनका जीवंत देवता। देखने भर से ही वह निर्जीव जड़ मालूम पड़ता है—वस्तुत: उसकी चेतना और प्रेरणा अद्भुत है। अज्ञातवास से लौटने पर गुरुदेव ने अखण्ड ज्योति में विस्तारपूर्वक इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया था कि अलौकिक शक्तियों का शक्तिकेंद्र ध्रुव प्रदेश में सन्निहित है। धरती पर सूर्य की शक्तियाँ पृथ्वी में ध्रुव के माध्यम से आती हैं। ठीक उसी प्रकार दिव्य चेतना शक्तियाँ पृथ्वी पर यहीं अवतरित होती हैं, जहाँ हिमालय का हृदय अवस्थित है—यहीं से वे सर्वत्र बिखर जाती हैं। वे उसे चेतन ध्रुव केंद्र कहते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से धरती का स्वर्ग उसी प्रदेश में सिद्ध होता है, जिसे बदरीनाथ और गंगाजी का मध्यवर्ती अधिक ऊँचाई का तिब्बत का समीपवर्ती भाग कहना चाहिए। देवताओं का निवास-स्थान सुमेरु पर्वत यहीं है। पांडव स्वर्गारोहण के लिए यहीं गए थे। असली कैलास, मानसरोवर-क्षेत्र वो नहीं जो तिब्बत (चीन) में चला गया, वरन वो है, जो गंगा के उद्गम गोमुख से आगे शिवलिंग पर्वत और दुग्ध सरोवर के नाम से जाना जाता है। फूलों से लदा हुआ नंदनवन यहीं है। देवता यहीं रहते हों तो आश्चर्य नहीं।

ध्रुव-प्रदेश में अगणित आश्चर्य दिख पड़ते हैं। इस हिमालय के हृदय में न केवल परिस्थितियाँ, वरन ऐसी शक्तियाँ और आत्माएँ भी विद्यमान हैं, जो संपर्क में आने वाले को आत्मिक अलौकिकता का भरपूर आभास करा सकें। गुरुदेव के मार्गदर्शक का एवं उन जैसे अन्य सूक्ष्मसत्ता संपन्न देवदूतों का क्रीड़ा-केंद्र भी यही है।

इस शक्ति केंद्र तक पहुँच जाना और वहाँ ठहर सकना ध्रुव-प्रदेशों से भी अधिक कठिन है। कभी न गलने वाली भाप और ऊँचाई में ऑक्सीजन की कमी, रास्ते का न होना, निर्वाह की सभी आवश्यकताओं का पूर्णतया अभाव यह सब अवरोध तो वहाँ जाने से रोकते ही हैं, साथ ही चेतन दिव्य शक्तियों की तीखी ब्रह्मांड किरणें जो धरती पर फैलने के लिए बरसती हैं, वे भी सामान्य शरीर के लिए सहन योग्य नहीं हैं।

इसलिए वह प्रदेश न केवल प्रकृति ने, बल्कि सरकार ने आवागमन के लिए निषिद्ध ठहराया है। दिव्य सत्ताओं ने इसलिए इसे क्रीड़ास्थली के रूप में सुरक्षित रखा है। सामान्य शरीर लेकर न वहाँ जाया जा सकता है और न ही वहाँ ठहरा जा सकता है।

इससे नीचे का उत्तराखंड के नाम से प्रसिद्ध यातायात संभावनाओं वाला सुलभ हिमालय प्रदेश भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। अपनी तप-साधना का केंद्रबिंदु गुरुदेव ने हिमालय को ही बनाया हुआ है। वह उनका आध्यात्मिक पिता है। चौबीस पुरश्चरणों के बीच भी वे समय-समय पर वहाँ जाते रहे हैं। जब भी, जरा भी दुर्बलता-उद्विग्नता अनुभव हुई कि वे सीधे हिमालय भागे।

यह क्रम उनका अब का नहीं, बल्कि पुराना है। सन् 60 का अज्ञातवास तो प्रसिद्ध भर है। उसे वे तपोभूमि के कार्यकर्त्ताओं की तथा संगठन परिवार की परीक्षा का अवसर बताकर चले गए थे। वैसे वे कितनी ही बार कई-कई महीनों के लिए उधर जाते रहे हैं और हर बार नई सामर्थ्य, स्फूर्ति लेकर लौटते रहे हैं।

वे उत्तराखंड के उस क्षेत्र में अभी भी आत्मसाधना के लिए उपयुक्त वातावरण मानते हैं। मोटरों की भरमार और सैलानी तीर्थयात्रियों की भीड़-भाड़ के वातावरण में दूषित तत्त्व आ घुसे हैं। भीड़ के साथ चलने वाली धूर्तमंडली ने भी धर्म की आड़ में तथा चोर-उचक्कों के रूप में स्थिति को काफी बिगाड़ा है। इतने पर भी वह प्रदेश अपनी विशेषताएँ अभी भी उतनी बनाए हुए है, जितनी अन्यत्र देखने-सुनने को भी नहीं मिल सकतीं।

चोरी, उठाईगीरी अभी भी उधर नहीं के बराबर है। आमतौर से लोग सूना घर, बिना ताला लगाए छोड़ जाते हैं। कुली गरीब होते हुए भी किसी का माल नहीं हड़पते। सुंदरता और गरीबी बहुत बढ़ी-चढ़ी होने पर भी व्यभिचार नहीं है। कठोर परिश्रम, संतोष और सज्जनता का ऐसा समन्वय अन्यत्र मिलना कठिन है। यह इस भूमि की, इस वातावरण की विशेषता है, जो वहाँ के निवासियों में इस गए-गुजरे जमाने में भी विद्यमान है।

सप्तर्षियों की, अगणित तपस्वियों की तपोभूमि यह हिमालय ही है। व्यास जी ने अठारह पुराण, शंकराचार्य जी ने उपनिषद् यहीं लिखे। समस्त आर्ष साहित्य यहीं सृजा गया। महान गुरुकुल चिकित्सा केंद्र और शोध संस्थान यहीं थे। भारत की आध्यात्मिक परंपराओं का सूत्र संचालन यहीं से हुआ है।

शिव-पार्वती का, देवसेना का निवास यहीं है, यह प्राचीन मान्यता है । पुराणों के अनुसार राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न जीवन के उत्तरार्द्ध में यहीं आकर तप-निमग्न हो गए। श्रीकृष्ण रुक्मिणी सहित बारह वर्ष के लिए बदरीनाथ स्थान पर तप करने आए थे। आध्यात्मिक और ऐतिहासिक स्तर पर उस भूमि की अपनी महत्ता है। अन्यत्र जो साधन देर में सफल होते हैं, वो इस उर्वरा भूमि में जल्दी उगते और फलते-फूलते हैं।

हिमालय के हृदय से सूक्ष्म संबंध गुरुदेव का बना हुआ है और स्थूलशरीर से उन्होंने उत्तराखंड में अपने साधनाकाल का बहुत-सा भाग लगाया है। अपने पूर्वजन्मों में अनेक स्थानों के साथ इस क्षेत्र में उनकी मधुर स्मृतियाँ सँजोयी हुई बताते हैं। सो यहाँ उन्हें अपना चिर-परिचित घर ही लगता है। जो रास्ते, घाटियाँ, परिस्थितियाँ स्थानीय लोगों तक को मालूम नहीं, उन्हें वे बता देते हैं। आठ वर्ष की आयु में घर से भागकर हिमालय जाने की हूक संभवत: उन्हें इसीलिए उठी हो।

जीवन के इस अंतिम भाग में उनकी योजना इसी क्षेत्र में शक्ति संपादन की है। इसी से उन्होंने हरिद्वार को मध्यवर्ती केंद्र बनाया है। तप में उनकी असाधारण रुचि है। गंगा और हिमालय के अंचल में वैसा ही सुख पाते हैं, जैसे कोई छोटा बालक माता-पिता की गोद में दुलार, संतोष पाता है। गुरुदेव का निर्धारित कार्य ही उन्हें जीवन भर करना है।

मात्र धूम-धाम में लगे रहकर तप से विमुख होकर शक्तिरिक्त भी नहीं होना चाहिए। इसलिए जिस स्थान से दोनों प्रयोजन पूरे करते रह सकें, वह केंद्र शांतिकुंज, सप्तसरोवर है। सप्तर्षियों की तपस्थली गंगा की सात धाराओं के क्रीड़ास्थल के मध्य केंद्र के रूप में बनाने का उनका चुनाव दूरदर्शितापूर्ण है। यहाँ से वे दोनों ही दिशाएँ सँभालते रहेंगे।

अभी उनके प्राय: सभी काम अधूरे पड़े हैं। नवनिर्माण के लिए जो वातावरण बनाया जाना चाहिए, उसमें गरमी लाने के लिए निस्संदेह प्रचंड आत्मबल और ज्वलंत तप:शक्ति की आवश्यकता है, सो अपनी साधनाओं से मार्गदर्शक के सहयोग से वे वो आवश्यकता पूरी करते रहेंगे।

अदृश्य रूप से तो अनेक सिद्धपुरुष और देवदूत ईश्वरीय इच्छा की पूर्ति में संलग्न हैं। गुरुदेव को तो स्थूल एवं प्रत्यक्ष क्रियाकलाप के लिए ही

वरण किया गया था। सो उन्हें उससे छुटकारा नहीं मिल सकता।

वे कब लौटेंगे यह दूसरी बात है, पर उनका क्रियाकलाप उभयपक्षीय ही रहेगा। अधिक शक्ति प्राप्त करने के लिए अधिक समय के लिए जाया करें यह हो सकता है, पर जनसंपर्क को सर्वथा तोड़ देना न उनके मार्गदर्शक को अभीष्ट है और न ही परिस्थितियाँ उन्हें वैसा करने देंगी। अस्तु उन्हें हरिद्वार का मध्य केंद्र विनिर्मित करना पड़ा, जिससे दोनों दिशाओं में अपनी गतिविधियाँ सक्रिय रख सकें।

साधारणतया उनका हिमालय-प्रवास कष्ट और कठिनाइयों से ही भरा होता है। आहार की अव्यवस्था, असह्य शीत, एकाकी निर्वाह, हिंसक जीवों की भरमार, मनोरंजन की शून्यता जैसी कितनी ही कठिनाइयाँ हैं। कपड़े धोना, हजामत जैसे छोटे साधन भी दुर्लभ होते हैं। हिमालय पिता उन्हें कठिनाई ही देता है।

इस सुनसान नीरवता में भौतिक दृष्टि से आकर्षण ही क्या है ? मार्गदर्शक गुरु की तरह लगता है कि यह पिता भी कम निष्ठुर नहीं। दुनिया की आँखें यही कह सकती हैं और गुरुदेव को दयनीय स्थिति में पड़ा हुआ, फँसा हुआ मान सकती हैं, पर जिन्हें दिव्यनेत्र वाली दिव्यदृष्टि प्राप्त है, वे देखें कि इस दिव्य भंडार में से वे कितनी संपदा लादकर लाते हैं। जब भी वापस आए हैं, उनकी जेबें बहुमूल्य उपलब्धियों से भरपूर ही निकली हैं ।

तीसरा उनका अभिभावक है—गायत्री मंत्र। इसे वे अपनी माँ कहते हैं। श्रुतियों ने उसे वेदमाता कहा है। पुराण उसे कामधेनु कहते हैं। तंत्र में उसका महाकाली, कुंडलिनीशक्ति, ज्वाला आदि नामों से विवेचन किया है और अग्निविद्या के नाम से उसके अवतरण की प्रक्रिया समझी गई है।

ब्रह्मवेत्ता उसे ब्रह्मविद्या, भूयां, ऋतंभरा आदि कहते हैं। जो भी कहा जाए कम है। वस्तुत: उसकी गरिमा और महत्ता इतनी अधिक है कि मनुष्य की वाणी तो क्या कल्पना भी उसके समान स्वरूप तक नहीं पहुँच सकती।

इस महाशक्ति की प्रचंड गरिमा को मनुष्य अपने भावचुंबक से आकर्षित कर सकता है और अपनी पात्रता के अनुरूप उसी दिव्य सत्ता का अभीष्ट अंश अपने में धारण कर सकता है। गायत्री वह अग्नि है, जिससे मनुष्य के समस्त कषाय-कल्मष जल सकते हैं और वह शुद्ध स्वर्ण की तरह अपना गौरव एवं वर्चस्व प्रतिपादन करने में भी समर्थ हो सकता है ।

लोग उपासना का एक अंश ही सीखे हैं—कर्मकांड। जप, हवन, स्तवन, पूजन आदि शरीर एवं पदार्थों से संपन्न हो सकने वाली विधि-व्यवस्था तो कर लेते हैं, पर उस साधना को प्राणवान सजीव बनाने वाली भावना के समन्वय की बात सोचते तक नहीं।

सोचें तो तब, जब भावना नाम की कोई चीज उनके पास हो। बड़ी मछली छोटी को निगल जाती है और कामना—भावना को; कामनाओं की नदी में आमतौर से लोगों की भाव-कोमलता जल-भुनकर खाक होती रहती है। तथ्य यह है कि भावना पर, श्रद्धा-विश्वास पर, आंतरिक उत्कृष्टता पर ही अध्यात्म की, साधना की, सिद्धियों की आधारशिला रखी हुई है।

ये मूल तत्त्व ही न रहें तो साधनात्मक कर्मकांड मात्र धार्मिक क्रियाकलाप बनकर रह जाते हैं, उनका थोड़ा-सा मनोवैज्ञानिक प्रभाव ही उत्पन्न होता है।

साधना के चमत्कार श्रद्धा पर अवलंबित हैं। मीरा, सूर, कबीर, तुलसी, नरसी आदि भक्त-संतों की; शंकराचार्य, ज्ञानेश्वर, बुद्ध, अरविंद, रमण, विवेकानंद, रामतीर्थ आदि संतों की; ऋषियों और तत्त्वज्ञानियों की जो साधन सफलता देखी-सुनी जाती है, उसमें उनकी भाव-गंभीरता ही प्रधान कारण थी। ❑

वनरक्षक भील महिलाएँ

किस बात ने उन्हें अपने वनों की रक्षक बनने और इंतना हरा बनाने के लिए प्रेरित किया—इस एक प्रश्न के जवाब में मध्यप्रदेश के अलीराजपुर जिले के अट्टा गाँव की एक भील महिला, दहेली बाई ने कहा—"मुझे बहुत गुस्सा आया कि शहरों में लकड़ी की पूर्ति के लिए हमारे सारे जंगलों को काटने के बाद वन विभाग जंगल के विनाश के लिए हमें दोषी ठहरा रहा है तो मैंने अपने गाँव की महिलाओं को इकट्ठा किया और इन पहाड़ियों की सुरक्षा करना शुरू कर दिया। अब कोई हम पर आरोप नहीं लगा सकता है।"

गुजरात में भड़ूच के मैदानों में प्रवेश करने से पहले विंध्याचल की वृहद् आखिरी शृंखला को बनाता हुआ अलीराजपुर का सौंदवा ब्लॉक नर्मदा नदी के एक किनारे का पर्वतीय इलाका है। ढलानों में पतली लाल मिट्टी के साथ घाटी की सँकरी पट्टियों में मध्यम गहराई वाली कुछ काली मिट्टी होती है। खराब भूमिगत जलदायी गुणों के साथ इसके नीचे हैं असिताश्मी (बसॉल्टिक) सख्त पत्थर। औसत वार्षिक वर्षा 900 मिलीमीटर है, जो बारिश के मौसम (मध्य जून से मध्य अक्टूबर) में होती है।

भील आदिवासियों ने इस अर्द्धशुष्क पर्यावरण तंत्र को घाटी में जैविक कृषि द्वारा अपना लिया है। लकड़ी की पूर्ति के लिए जंगलों से साधनों को एकत्रित किया जाता है, इसमें सलाई और प्रचुर मात्रा में घास, जड़ी-बूटियाँ शामिल हैं। नीचे सख्त पत्थर होने के बावजूद जंगल की हरियाली सुनिश्चित रखती है कि पत्थरों की दरारों के माध्यम से बारिश के पानी से पर्याप्त प्राकृतिक पुनःपूर्ति होती रहे। फलस्वरूप पहले की तुलना में झरनों में अब पूरे साल पानी रहता था।

सन् 1956 में राज्यों के पुनर्गठन और मध्य प्रदेश राज्य के गठन से चीजों में बहुत अधिक परिवर्तन आया। अलीराजपुर पर पहले एक सामंती राजा का शासन था, जिसका आदिवासियों पर बहुत अधिक नियंत्रण नहीं था और वे अधिकतर मिलकर श्रम करने की परंपराओं से काफी नजदीकी से जुड़े समुदाय के रूप में रहते थे। जब यह क्षेत्र वन विभाग को सौंपा गया, तब से लकड़ी उत्पादन के लिए इसका वाणिज्यिक शोषण आरंभ हुआ।

इससे संवेदनशील पर्वतीय पर्यावरण तंत्र बिगड़ गया और जंगलों के खतम होने से जल्दी ही मिट्टी की पतली परतें बह गईं। बारिश की प्राकृतिक पुनःपूर्ति भी काफी हद तक घट गई, जिसके परिणामस्वरूप झरने सूख गए।

इसका सबसे अधिक प्रभाव भीलों की आजीविका पर हुआ; क्योंकि जमीनों की उर्वरता के साथ-साथ वन-उत्पादों की आपूर्ति भी गंभीर रूप से घट गई। इसके साथ-साथ भारतीय वन अधिनियम के प्रावधानों ने सुनिश्चित किया कि उन्हें उनके ही घर में अपराधी माना जाए और उन्हें जंगल में पहुँच के लिए वन-अधिकारियों को रिश्वत देने के लिए मजबूर होना पड़ा।

सन् 1983 में आदिवासियों ने अपने अधिकारों, विशेषकर जंगलों की सुरक्षा के अधिकार की माँग करने के लिए स्वयं को संगठित करना आरंभ किया, जो उनका जीवन है। उन्होंने 'खेदुत मजदूर

चेतना संगठन' का गठन किया और जंगलों की सुरक्षा आरंभ कर दी, जो कि सौंदवा ब्लॉक के करीब 50 गाँवों में निरावृत हो चुके थे।

दहेली बाई के नेतृत्व में, अट्टा गाँव की महिलाओं ने संघर्ष शुरू किया, जो जल्द ही पास के गाँवों में फैल गया। दहेली बाई के साथ वेस्ती बाई नदिका के साथ ऊपर की ओर गईं, जो उनके गाँव से होते हुए गेंदा और फदतला गाँव को जाती है और वहाँ महिलाओं को समझाया कि चूँकि यह धारा फदलता से शुरू होती है, मिट्टी, पानी और वन-उत्पादों की उपलब्धता के रूप में वन सुरक्षा का पूर्ण लाभ उन्हें तभी मिलेगा, जब वे भी अपने जंगलों की सुरक्षा करना आरंभ करेंगी। बड़े पैमाने पर पेड़ों की कटाई के कारण अट्टा की नदी गरमियों में सूखने लगी। इस प्रयास का परिणाम है कि 10 वर्षों में सन् 1990 के आरंभ से नदी फिर से बारहमासी हो गई।

इस संरक्षण का अनोखापन है, इसकी भीलों की पारंपरिक मिलकर श्रम करने की प्रथा पर निर्भरता—यह पैसों की अर्थव्यवस्था के अंदर आने और प्राकृतिक संसाधनों के आधार के विनाश से फीकी पड़ती जा रही थी।

हालाँकि दहेली बाई के नेतृत्व में अट्टा की महिलाओं ने 5 या 6 का समूह बनाया और जंगल की रखवाली शुरू की, ताकि यह सुनिश्चित हो कि जंगलों को चरा नहीं जाएगा और जड़ों को पुनर्जीवित होने दिया जाएगा।

भील महिलाओं ने एक और संरक्षण गतिविधि शुरू की। छोटे समूहों में खेतों में काम करना शुरू किया। खेतों के बीच की गलियों को पत्थरों से भरा, ताकि बारिश के पानी के साथ बहने वाली मिट्टी और कुछ पानी को रोका जा सके। डेढ़ दशक की अवधि में सन् 1990 के मध्य से, सैकड़ों ऐसी गलियों को भरा गया, जिसके परिणामस्वरूप गहरी मिट्टी के साथ कई सारे छोटे भूमि के टुकड़ों का निर्माण हुआ, जिससे गाँव की पैदावार में वृद्धि हुई।

यह अभ्यास भी अलीराजपुर के कई अन्य गाँवों में दोहराया गया। जब दहेली बाई से जंगल में अकेले रहने के खतरों के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा—"मैंने जंगल में इस झोंपड़े में एक दशक गुजारा है और जब से मैं यहाँ आई हूँ, मेरी जिंदगी गाँव से बेहतर रही है।"

आज यह जंगल भी हरा-भरा और घना नजर आता है। पर्यावरण विशेषज्ञों का कहना है—"जंगल, जमीन और पानी के संरक्षण के लिए समुचित ढंग से सामूहिक कार्रवाई ही एकमात्र दीर्घोपयोगी तरीका है, जिससे देश के पर्वतीय, अर्द्धशुष्क और सख्त पथरीले क्षेत्रों के संवेदनशील पर्यावरण तंत्रों की उत्पादकता को सुनिश्चित किया जा सकता है।" आज दहेली बाई जैसी साहस एवं सूझ-बूझ वाली महिलाओं की आवश्यकता भारत में अनेकों स्थानों पर है। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—181

हिंदी सिनेमा पर शोध अध्ययन

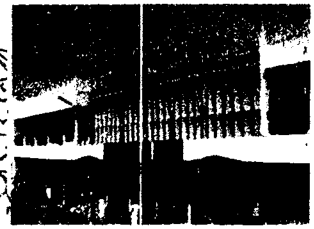

भारत में फिल्म उद्योग वर्तमान परिदृश्य में एक बड़ा आर्थिक और व्यावसायिक क्षेत्र है। वैसे तो फिल्मों का संबंध कला, नृत्य, संगीत और मनोरंजन से ज्यादा रहा है, परंतु इस क्षेत्र का एक गहरा संबंध हमारी सांस्कृतिक अस्मिता, राष्ट्रीय गौरव तथा जीवन आदर्शों से भी रहा है। फिल्मों में व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में प्रेरणा, उत्साह व जागरूकता उत्पन्न करने वाले विषयों का जीवंत प्रस्तुतीकरण समय-समय पर दिखाई देता आया है। हिंदी सिनेमा में तो ऐसे अनेक प्रतिमान स्थापित हुए हैं, जिनमें जनसमाज की अंतर्भावनाओं को समय की माँग के अनुरूप क्रांतिकारी ढंग से प्रभावित और प्रेरित किया है।

बॉलीवुड के नाम से सुप्रसिद्ध हिंदी सिनेमा ने अपनी एक सदी से ज्यादा की लंबी यात्रा में समय एवं समाज के परिवर्तनशील उतार-चढ़ाव को बखूबी पार किया है। कहा जाता है कि फिल्में समाज का दर्पण हैं। इस तथ्य के संदर्भ में हिंदी सिनेमा का उद्‌भव, विकास और विस्तार अत्यंत रोचक है, परंतु वर्तमान में इसके समक्ष अनेक चुनौतियाँ और विसंगतियाँ इसे चिंतन और चिंता का विषय भी बनाती हैं।

हिंदी सिनेमा की सुदीर्घ यात्रा की गहन पड़ताल करने तथा वैज्ञानिक रीति से प्राप्त तथ्यों के आधार पर इसकी समय-सापेक्ष दशा और दिशा की विस्तृत व्याख्या-विवेचना करने वाला एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य विगत दिनों संपन्न किया गया है। यह शोधकार्य देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग के अंतर्गत वर्ष-2018 में किया गया है।

इस विशिष्ट शोध अध्ययन को शोधार्थी नीमा नेगी द्वारा विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० स्मिता वसिष्ठ के निर्देशन में पूरा किया गया है। इस शोध का विषय है—'**क्रिटिकल एनालिसिस ऑफ चेंजिग ट्रेंड इन हिंदी सिनेमा**'।

प्रयोगात्मक एवं विवेचनात्मक विधि पर आधारित इस शोध अध्ययन को कुल छह अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है। क्रमशः सभी अध्यायों का सार-संक्षेप यहाँ पाठकवृंद के ज्ञानवर्द्धन की दृष्टि से प्रस्तुत किया जा रहा है—

प्रथम अध्याय '**विषय प्रवेश**' के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें भारतीय सिनेमा की उत्पत्ति, सिनेमा हॉल का विस्तार, हिंदी सिनेमा का स्वर्णिम काल तथा उसकी दशक-दर-दशक यात्रा की उपलब्धियों, आदर्शों एवं चुनौतियों का विवेचन किया गया है। भारत में हिंदी सिनेमा की पृष्ठभूमि वर्ष 1840 से 1850 के मध्य तैयार हुई, जब पश्चिमी देशों से यहाँ फोटोग्राफी पहुँची और अनेक फोटो स्टूडियो मुंबई, (कोलकाता) जैसे शहरों में स्थापित हुए।

इसी क्रम में मुंबई में सन् 1896 में पहली चलचित्र फिल्म की शुरुआत हुई। सन् 1913 में पहली फुल लेंथ फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' को दादा साहेब फाल्के द्वारा प्रदर्शित किया गया, इसलिए इन्हें फिल्म उद्योग का पिता भी कहा जाता है।

सन् 1930 से 1960 तक हिंदी सिनेमा का बहुआयामी विस्तार हुआ।

कला, मनोरंजन, संस्कृति, समाज, राष्ट्र और भक्ति-उपासना, पौराणिक तथा ऐतिहासिक विषयों की प्रधानता के साथ आगे बढ़ती हिंदी सिनेमा की यात्रा में राजनीति, हास्य रोमांस, संगीत, न्याय, जाति-भेद, ऊँच-नीच आदि अनेक नए-नए आयाम जुड़ते गए।

देश की स्वतंत्रता से लेकर लगभग सन् 1970 के काल को हिंदी सिनेमा का स्वर्णयुग कहा गया। इस युग में भारत के संघर्ष, वस्तुस्थिति, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण के प्रभावों, सामाजिक विसंगतियों, राष्ट्रप्रेम, सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों-आदर्शों को प्राथमिकता के साथ फिल्मों की विषय-वस्तु में गुँथा गया। इसके बाद जो हिंदी सिनेमा की यात्रा है, उसका विश्लेषण कर उसकी मूल प्रवृत्ति का मूल्यांकन करना ही इस शोध का उद्देश्य है।

अध्याय का द्वितीय सोपान '**साहित्यिक सर्वेक्षण**' है। इसमें हिंदी सिनेमा में एक बड़ा परिवर्तन लाने वाले मल्टीप्लेक्स का चलन और समाज पर इसके प्रभाव से संबंधित तथ्यों को उपलब्ध कराने वाले साहित्य, हिंदी सिनेमा में महिला कलाकारों की भूमिकाओं के बदलते स्वरूप से संबंधित साहित्य, फिल्मों की विषय-वस्तु, भाषा-शैली और तकनीकी प्रयोग व वैश्विकता के जुड़ते आयाम आदि से संबंधित साहित्य का समावेश किया गया है।

वैश्वीकरण और अभिव्यक्ति की आजादी के दुष्प्रभाव का असर भी इस क्षेत्र पर पड़ा, जिससे अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हुई हैं। शोधार्थी ने समांतर रूप से ऐसी प्रवृत्तियों को भी स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है।

शोधार्थी द्वारा इस अध्ययन के उद्देश्य को तीन पहलुओं पर केंद्रित किया गया है, पहला— प्रसिद्ध निर्देशकों से संबंधित चयनित फिल्मों का अध्ययन, दूसरा—वर्ष 1970-2015 के मध्य फिल्मों की बदलती विषय-वस्तु का विश्लेषण एवं विवेचन तथा तीसरा—भारतीय हिंदी सिनेमा की बदलती प्रवृत्ति का अध्ययन करना।

द्वितीय अध्याय में '**शोध प्रविधि**' का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसके अंतर्गत शोध अध्ययन हेतु महत्त्वपूर्ण आँकड़ों को प्राप्त करने हेतु अपनाई गई शोध-प्रक्रिया, शोध-विधि, शोध-उपकरण, चयनित स्रोतों का वर्गीकरण आदि प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन में कुल 22 ऐसी प्रसिद्ध निर्देशकों की हिंदी फिल्मों को चयनित किया गया है, जिनका देश के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक मुद्दों से गहरा संबंध है। जैसे सन् 1970 के दशक की फिल्में हैं—दस्तक, अंकुर, गरम हवा, रोटी, दीवार इत्यादि। सन् 1980 से 90 की उमराव जान, प्रेमरोग, अर्धसत्य, मोहनजोशी हाजिर हो, दामुल आदि। 1990 के दशक की दामिनि, हम आपके हैं कौन, सत्या, जख्म। 2000 के दशक की मानसून वेडिंग, लगान, बागवान, लगे रहो मुन्ना भाई, रंग दे वसंती तथा 2015 के दशक की पिपली लाइव, पानसिंह तोमर, ओ माय गॉड आदि। इन सभी फिल्मों को डीवीडी व ऑनलाइन फिल्म स्रोतों से प्राप्त किया गया।

तृतीय अध्याय है—"**प्रसिद्ध निर्देशकों के संदर्भ में भारतीय सिनेमा का अवलोकन**।' इसमें चयनित निर्देशकों की प्रसिद्ध फिल्मों तथा उनकी विचारधारा का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है। ये चयनित निर्देशक हैं—श्याम बेनेगल, राजिंदर बेदी, एम०एस० सथ्यू, मनमोहन देसाई, यश चोपड़ा, गोविंद निहलानी, सईद अख्तर मिर्जा, राजकपूर, मुजफ्फर अली, प्रकाश झा, राजकुमार संतोषी, सूरज बड़जात्या, राम गोपाल वर्मा, महेश भट्ट, मीरा नायर, आशुतोष गोवारिकर, रवि चोपड़ा, राजकुमार हिरानी,

राकेश ओम प्रकाश मेहरा, तमांशु धुलिया, अनुषा रिज्वी, उमेश शुक्ला तथा नीरज दीवान।

चतुर्थ अध्याय—'**राष्ट्र के संदर्भ में फिल्मों की बदलती विषय-वस्तु और प्रवृत्ति की विविधता का विश्लेषण।**' इसमें चयनित दशकों में फिल्मों के बदलते आयाम तथा सामाजिक एवं राष्ट्रीय चुनौतियों के हिंदी फिल्मों पर पड़ने वाले प्रभाव का तथ्यात्मक विवेचन किया गया है। जैसे 70 के दशक में राष्ट्रप्रेम, सामाजिक विघटन की विसंगतियाँ, राजनीतिक द्वंद्व आदि से 80 के दशक में ड्रामा, वास्तविकता, संगीत आदि की प्रवृत्ति मुखर हुई जो आगे अपराध, कला, संगीत और ड्रामा फिल्मों की प्रचुरता के रूप में सामने आई।

21वीं सदी में हिंदी सिनेमा नए परिवर्तन के साथ तकनीकी आधार लिए वैश्विक फलक में प्रवेश करने को आतुर दिखाई दिया। संगीत, रोमांच, देशभक्ति से आगे बढ़कर इसकी विषय-वस्तु में सामाजिक मुद्दे, खेल, हास्य जीवनवृत्त, स्त्री विमर्श और अनछुए ऐतिहासिक मुद्दे एवं चरित्र-चित्रण आदि भी सम्मिलित हो गए। इस बदलाव के साथ ही मल्टीप्लेक्स संस्कृति, बदलते संगीत, वेशभूषा, भाषाशैली, फैशन आदि अनेक तरह के परिवर्तित आयामों के साथ ही विसंगतियाँ भी इसमें जुड़ती गईं और साथ ही चुनौतियाँ भी।

पंचम अध्याय में शोध तथ्यों के विश्लेषण से प्राप्त '**परिणामों की व्याख्या एवं विवेचना**' प्रस्तुत की गई है। कुल 26 बिंदुओं में शोधार्थी द्वारा यह दरसाया गया है कि हिंदी सिनेमा ने हमारी भारतीय संस्कृति, राष्ट्र और उदात्त आदर्शों को आत्मसात् करके प्रारंभ की अपनी यात्रा में परिवर्तन को भी स्वीकार किया और समय के साथ चलने की चुनौती को भी स्वीकार किया है।

इससे उसके स्वरूप, आयामों एवं विषय-वस्तु में व्यापक विस्तार स्पष्ट दिखाई देता है। साथ ही इसमें कुछ विसंगतियाँ भी आई हैं। व्यावसायिक दृष्टिकोण को अपनाकर फूहड़ता, अश्लीलता और युवा पीढ़ी पर नकारात्मक प्रभाव डालने वाले तथ्यों से सभी परिचित हैं।

जो हिंदी सिनेमा एक समय भारतीय जनसमाज की आवाज बनकर समूचे राष्ट्र में क्रांति उत्पन्न कर देता था, वही आज समाज में भ्रांतियाँ, अश्लीलता, वैमनस्य, मूल्यहीनता और अपसंस्कृति का संवाहक बनता जा रहा है।

शोध अध्ययन का षष्ठ अध्याय '**उपसंहार**' है। इसके अंतर्गत शोध के सारांश, निष्कर्ष, उपादेयता एवं सुझाव आदि को प्रस्तुत किया गया है। शोधार्थी ने हिंदी सिनेमा की बदलती प्रवृत्ति के सभी प्रमुख कारणों का तथ्यात्मक रूप से उल्लेख करते हुए नए परिवर्तन के अच्छे एवं बुरे, दोनों पक्षों को उजागर करने का प्रयास किया है। साथ ही शोधार्थी चिंता के विषयों को भी सामने लाया है, जैसे—ग्रामीण संस्कृति और कृषकों के मुद्दों की न्यूनता, बच्चों की अनदेखी, पौराणिक और स्वस्थ हास्य-विनोद का अभाव आदि।

अध्ययनकर्त्ता का यह भी मत है कि हिंदी सिनेमा की शिक्षा के लिए अच्छे प्रशिक्षण संस्थानों की कमी भी फिल्मों के स्तर को प्रभावित करती है। इस दिशा में सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थानों को संयुक्त रूप से पहल करने की आवश्यकता दरसाई गई है। ❑

मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः॥

अर्थात मोक्ष किसी स्थान पर रखा हुआ नहीं मिलता और न उसे ढूँढ़ने के लिए किसी दूसरे गाँव को ही जाना पड़ता है। हृदय की अज्ञान-ग्रंथि का नष्ट होना ही मोक्ष कहा जाता है।

संन्यास और त्याग

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की प्रथम किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के अट्ठाईसवें श्लोक की व्याख्या इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इस श्लोक में भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं—''हे पार्थ! अश्रद्धा से किया हुआ हवन, दिया हुआ दान, तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया जाए वह 'असत्' कहा जाता है और उसका फल न तो यहाँ मिलता है और न ही मरने के बाद मिलता है।'' इस श्लोक के साथ ही 'श्रद्धात्रय विभाग योग' नामक सत्रहवें अध्याय की समाप्ति हो गई। इस अध्याय का प्रारंभ अर्जुन द्वारा व्यक्त की गई जिज्ञासा से हुआ था, जिसमें वे पूछते हैं कि जो मनुष्य शास्त्रविधि का त्याग करके श्रद्धापूर्वक पूजन करते हैं, उनकी निष्ठा फिर कौन-सी है ? सात्त्विकी है अथवा राजसी-तामसी ? अर्जुन की इस जिज्ञासा का उत्तर देते हुए भगवान कृष्ण अर्जुन को बताते हैं कि सात्त्विक मनुष्य देवताओं का पूजन करते हैं, राजसी मनुष्य यक्षों तथा राक्षसों का एवं तामसी मनुष्य प्रेतों और भूतगणों का पूजन करते हैं। इसके उपरांत श्रीभगवान यज्ञ, तप एवं दान के साथ ही आहार का वर्गीकरण भी तीनों गुणों के आधार पर करते हैं। तप में भी वे शरीर संबंधी तप, वाणी संबंधी तप एवं मन संबंधी तप की अलग-अलग व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। ये सब बताने के उपरांत वे अर्जुन को बताते हैं कि ॐ, तत्, सत्—इन तीन प्रकार के नामों से जिस परमात्मा को संबोधित किया गया है, उसी परमात्मा के निर्देश से सभी की सृष्टि हुई है। अतः वैदिक सिद्धांत को मानने वाले समस्त कर्मों को उन्हीं को समर्पित करते हैं। उसी शाश्वत सत्य को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि यज्ञ तप तथा दानरूप क्रिया में जो निष्ठा है, वह 'सत्' कही जाती है और उस परमात्मा के निमित्त किया जाने वाला कर्म भी 'सत्' कहा जाता है। इसके विपरीत 'असत्' कर्म का परिणाम न तो इहलोक में मिलता है और न ही परलोक में मिलता है। इस तरह सत्रहवें अध्याय में अर्जुन की इस महत्त्वपूर्ण जिज्ञासा का समाधान करने के उपरांत 'मोक्ष संन्यास योग' नामक अठारहवें अध्याय का प्रारंभ होता है।]

अर्जुन, भगवान कृष्ण से कहते हैं कि

सन्न्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन॥ 1॥

शब्दविग्रह—सन्न्यासस्य, महाबाहो, तत्त्वम्, इच्छामि, वेदितुम्, त्यागस्य, च, हृषीकेश, पृथक्, केशिनिषूदन।

शब्दार्थ—हे महाबाहो! (**महाबाहो**), हे अंतर्यामिन्! (**हृषीकेश**), हे वासुदेव! (मैं) (**केशिनिषूदन**), संन्यास (**सन्न्यासस्य**), और (**च**), त्याग के (**त्यागस्य**), तत्त्व को (**तत्त्वम्**), पृथक-पृथक (**पृथक्**), जानना (**वेदितुम्**), चाहता हूँ (**इच्छामि**)।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

अर्थात अर्जुन बोले—"हे महाबाहो! हे केशिनिषूदन! मैं संन्यास और त्याग का तत्त्व अलग-अलग जानना चाहता हूँ।" यह अध्याय श्रीमद्भगवद्गीता का अंतिम अध्याय है, अतः इस अध्याय में अर्जुन अपनी जिज्ञासा के अंतिम शिखर पर पहुँचते हैं।

पहले अध्याय में विषाद को प्राप्त होने वाले अर्जुन की तब की जिज्ञासा और अब की जिज्ञासा में भारी अंतर है। उस समय उनके मन में उठने वाले प्रश्न पलायन के थे और अब उठने वाले प्रश्न समाधान के हैं। इसीलिए अब उनकी जिज्ञासा इस आशय के साथ है कि उनको जीवन का पथ प्राप्त हो सके।

इसी कारण से वे श्रीभगवान के लिए तीन संबोधनों का प्रयोग करते हैं और कहते हैं—हे महाबाहो! यहाँ महाबाहो कहने का अभिप्राय भगवान कृष्ण की सर्वज्ञता से है और वे उन्हें सर्वप्रथम महाबाहो कहकर पुकारते हैं; क्योंकि उन्हें ज्ञान है कि भगवान सभी विषयों का समानरूपेण समाधान करने में सक्षम हैं।

इसके बाद वे उन्हें दूसरा संबोधन देते हुए कहते हैं कि हे हृषीकेश! हृषीकेश अंतर्यामी या मन की बात जानने वाले को कहते हैं और अर्जुन भगवान को ऐसा कहकर पुकारते हैं; क्योंकि वे अब यह जानते हैं कि भगवान शब्दों के पीछे छिपे उनके मनोभावों से परिचित हैं। अतः वे उनको भाँपकर उसी के अनुरूप उत्तर दे दें।

इसके बाद वे भगवान कृष्ण को केशिनिषूदन कहते हैं अर्थात विघ्नों को दूर करने वाले। कौन-से विघ्न? वो विघ्न जो भगवान द्वारा प्रदत्त उत्तर को आत्मसात् करते समय आते हैं। इसलिए वे भगवान से निवेदन करते हैं कि आप समस्त विषयों को अच्छे से जानने वाले हैं, साथ ही आप मेरे मनोभावों को पढ़ने में भी सक्षम हैं, अतः मेरी जिज्ञासा का शमन करने के साथ ही उस पथ पर बढ़ते समय जो विघ्न आते हैं, कृपया उनका भी शमन कर दें।

इसके उपरांत वे एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न करते हैं कि हे भगवान! कृपया आप त्याग एवं संन्यास को मुझे अलग-अलग समझाएँ। ऐसा इसलिए; क्योंकि अनेकों लोग, इन दोनों को एक ही मानकर बैठ जाते हैं।

यह प्रत्येक पाठक को स्मरण होगा कि जब प्रथम अध्याय में अर्जुन को मोह हुआ तो उस समय वे सब छोड़ने की बातें करने लगे थे। उस स्वजनों के प्रति मोह को दूर करने के उद्देश्य से भगवान ने गीता का उपदेश आरंभ किया और ये धीरे-धीरे उन्हें स्पष्ट होता गया कि संन्यास का अर्थ बाह्य त्याग या परिस्थितियों से पलायन नहीं, वरन आंतरिक त्याग से है। इसी कारण वे दोनों को अलग-अलग जानने की इच्छा व्यक्त करते हैं।

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।
किं नु मे पशुभिस्तुल्य किं न सत्पुरुषैरिति॥

अर्थात बुद्धिमान को चाहिए कि प्रतिदिन अपने कर्मों का अवलोकन करे कि मेरे कार्य पशुकर्मों के समान हैं या श्रेष्ठ मनुष्यों के कर्त्तव्य के योग्य हैं।

हृषीकेश का एक अर्थ इंद्रियजित् या इंद्रियों के स्वामी से भी होता है और वहीं केशिनिषूदन शब्द केशि नामक दैत्य के संहार से आया है, जो लोगों के सम्मुख विघ्न उपस्थित किया करता था। इसीलिए अर्जुन यहाँ जिज्ञासा व्यक्त करते समय भगवान को इन नामों से संबोधित करते हैं। (क्रमशः)

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

वसुधैव कुटुम्बकम् (प्रथम किस्त)

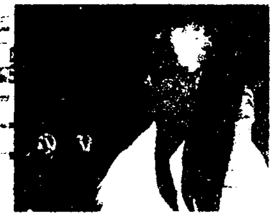

परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों की यह विशिष्टता है कि उनके द्वारा कहे गए शब्द और दिए गए आश्वासन न केवल गायत्री परिजनों के हृदय को भावासिक्त करते हैं, बल्कि वे अनेकों ऐसे व्यक्तियों के चिंतन और चरित्र को परिवर्तित करने का कार्य करते हैं, जिन्हें संभवतया उनके शब्दों को सुन पाने का सौभाग्य प्रथम बार ही मिला हो। अपने एक ऐसे ही भावपूर्ण प्रवचन में परमवंदनीया माताजी समस्त श्रोताओं को स्मरण दिलाती हैं कि अध्यात्म का वास्तविक अर्थ क्या है ? वे कहती हैं कि भगवान जीवसेवा में छिपे हुए हैं, सिर्फ उन्हें सेवा के माध्यम से प्रकट जगत् में लाने की आवश्यकता है। वंदनीया माताजी बताती हैं कि जो भावनाओं से अभिपूरित होते हैं, वे ही यज्ञ के सत्य उद्देश्य को समझ पाते हैं एवं आत्मसात् कर पाते हैं। आइए हृदयंगम करते हैं, उनकी अमृतवाणी को.......

सेवा में भगवान

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

हमारे आत्मीय परिजनो! गांधी जी के अंदर संवेदना थी। पूजा कितनी देर करते थे, मालूम नहीं। कितनी देर करते थे, आधा घंटे कीर्तन करते थे। बाकी का क्या करते थे ? वह राष्ट्र की सेवा में लगे रहते थे और बगैर किसी स्वार्थ के राष्ट्र की सेवा में लगे रहे, तो वह राष्ट्रपिता हो गए। एक बार उन्होंने परचुरे शास्त्री की सेवा की, वे कोढ़ी थे। कई बार तो वहाँ अपने स्वयंसेवकों को भेज देते थे।

एक बार उन स्वयंसेवकों में कुछ उदासीनता आ गई, तो उन्होंने कहा कि बापू आप इनको मत भेजिए। मैं तो वैसे ही ठीक हो जाऊँगा। वह समझ गए और परचुरे शास्त्री की उन्होंने दूसरे ही दिन से स्वयं सेवा प्रारंभ कर दी। इसी तरीके से एक पादरी आए और उन्होंने रामकृष्ण परमहंस से कहा—"आप दिखावा करते हैं, आप ढोंग करते हैं और यह कहते हैं कि भगवान का साक्षात्कार हो गया, आप कालीमय हो गए, हमने ऐसा सुना है, तो आप दिखाइए कि कहाँ है भगवान ? हम देखना चाहते हैं, नहीं तो आप झूठ बोलते हैं।"

उन्होंने कहा—"हम बिलकुल दिखाएँगे।" नदी के किनारे कुटिया बनी थी और उस कुटिया में एक कोढ़ी पड़ा था, वहाँ वे पहुँचे। उन्होंने कहा—आप यहीं खड़े रहिए और उन्होंने उस कोढ़ी की सेवा की। जिस तरीके से माँ अपने बच्चे की सेवा करती है, उसी तरीके से उन्होंने उस कोढ़ी की सेवा की, तो वह पादरी उनके चरणों पर गिर गए और उन्होंने कहा कि बिलकुल हम मानते हैं कि आपको काली का साक्षात्कार हो गया। आप कालीमय हैं।

संवेदना का पाठ पढ़ें

बेटे! यह क्या है? यह अंदर की संवेदना है और भावनाएँ हैं। सेवा की भावना है। गुरुजी ने भी यही किया था। एक हरिजन महिला थी, बुढ़िया थी। जो उनकी दादी की उम्र की होगी, वह लड़के से थे तो उन्होंने उस बुढ़िया की सेवा तब तक की, जब तक वह स्वस्थ नहीं हो गई, तब तक सेवा करते रहे। आप जानते हैं, पहले छुआछूत ज्यादा थी, अब नहीं है। गाँव से उन्हें अलग निकाल दिया। अलग से उनको खाना-पीना देने लगे। पत्तल में देने लगे, कागज पर देने लगे।

उन्होंने कहा—ब्राह्मण का लड़का होकर हरिजन की सेवा करेगा। उन्होंने कहा कि वह हरिजन महिला मेरी दादी की उम्र की है। मान लो कल को मेरी माँ को ऐसा रोग हो जाता है, तो क्या मैं अपनी माँ की सेवा नहीं करूँगा? तो फिर इसकी सेवा करने में क्या बात है? और उन्होंने उसकी भरपूर सेवा की। यह व्यक्ति के अंदर की संवेदना है। संवेदना का पाठ हम आपको पढ़ाना चाहते हैं कि आप संवेदना का पाठ पढ़ें और उस संवेदना को लेकर के यहाँ से जाएँ।

यहाँ इसमें अपने भारतीय प्रवासी भी आए हैं। आज मैंने उनसे एक ही बात कही थी कि बेटा आप हमारे बच्चे हैं। हम तो आपके ऊपर छाए रहेंगे; लेकिन आप यह मत समझें कि आप लंदन के हैं या अमेरिका के हैं। कहाँ के हैं? जो जिस जगह का है, उस जगह का आप विस्तार कीजिए। आपको विस्तार करना पड़ेगा। आप इसीलिए वहाँ भेजे गए हो और हमसे संपर्क हुआ है, तो हम आपको बाध्य करेंगे। हमारे भारतीय प्रवासी कई लाख हैं।

यदि भारतीय संस्कृति का विस्तार ये कर सकें और इनके अंदर भावनाएँ पैदा हों, तो ये क्या नहीं कर सकते हैं? ये तहलका मचा सकते हैं। अकेले विवेकानंद थे, तो उन्होंने सारे विश्व में तहलका मचा दिया था। तो हमारे इतने विवेकानंद बैठे हैं और इतनी सिस्टर निवेदिता बैठी हैं, तो ये नहीं करेंगे? ये तो जाने क्या कर सकते हैं? ये बहुत कुछ कर सकते हैं। इनसे बहुत उम्मीद है। आज मैंने उनको यही समझाने की कोशिश की कि आप यहाँ आए हैं, इतने दूर से आप आए हैं और हजारों रुपये आपके किराये-भाड़े में लगे हैं, तो केवल खेल देखकर के ही मत जाना, यहाँ से कुछ शिक्षा लेकर के जाना, यहाँ से कुछ सीखकर के जाना; ताकि अपने यहाँ जाकर के आप भी इन विचारधाराओं को फैलाने में समर्थ हो सकें और आप बलवान हो सकें।

स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन के दिनों की घटना है। महात्मा गांधी को स्वराज्य आंदोलन के किसी परिषद् की अध्यक्षता करनी थी, पर बैठक निर्धारित समय से 45 मिनट देर से प्रारंभ हुई; क्योंकि बैठक में भाग लेने वाले नेता 45 मिनट तक नहीं पहुँचे। बैठक प्रारंभ करते हुए गांधी जी बोले—"यदि हमारे नेतागणों की समय पाबंदी की यही स्थिति रही तो हमें आजादी भी 45 मिनट देरी से ही मिलेगी।" गांधी जी के कथन का दरद हम अनुभव कर सकते हैं। वस्तुतः समय ही यथार्थ संपदा है, जो समय का सही उपयोग करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं, वे ही जीवन-संग्राम के विजेता बनते हैं।

बेटे! मैंने उनसे निवेदन किया कि आगे आने वाले समय में आपको क्या-क्या करना चाहिए? उस बात को तो मैं नहीं बता रही हूँ, पर उनसे मैंने आधा घंटे कहा कि आपको आगे आने वाले समय में क्या करना पड़ेगा?

अभी कोई मेरा इंटरव्यू लेने आए और उन्होंने कहा—माताजी! आप गुजराती में बोल दीजिए, मैंने कहा—देखो मैं गुजराती जानती नहीं हूँ। मैं तो हिंदी भाषी हूँ। हिंदी मुझसे बुलवा लीजिए। उन्होंने कहा—टूटी-फूटी भाषा में बोल दीजिए। ठीक है, मैं टूटी-फूटी गुजराती बोल दूँगी। मैंने टूटी-फूटी बोल दी, तो उनको आनंद आ गया। मैंने कहा—अच्छा, अबकी बार आऊँगी, तो मैं गुजराती में ही भाषण दूँगी। अरे उसमें क्या रखा है? गुजराती में करूँ छू, धरूँ छू। यही तो हैं दो-चार शब्द।

हाँ, तो हम उन शब्दों को रट लेंगे और घुमा-फिराकर कह देंगे, जैसी भाषा आप बोलते हैं। आप सही हिंदी भाषा कहाँ बोलते हैं? आधी लैंग्वेज तो आ ही जाती है गुजराती में, तो हमारी भी हिंदी आ जाएगी। हम बोलेंगे, बिलकुल गुजराती बोलेंगे और आपको गुजराती बोलकर दिखा देंगे। कल हमने आपको सुनाया था कि नहीं सुनाया था, कल सुनाया था। अब कल एक गीत आपको गुजराती में सुनाऊँगी, देखो सुनाते हैं कि नहीं सुनाते? तो फिर क्या वजह है? हम क्या नहीं कर सकते हैं?

आपसे उम्मीदें हैं

अब बुढ़ापे में, इस अवस्था में भी हम कर सकते हैं, तो आप नौजवान हो, क्यों नहीं कर सकते हो? आप नौजवानों में नया खून है। जो बूढ़े हो गए, उनकी तो चला-चली की वेला है, हमारा भी तो चला-चली का रास्ता है। भाई! अभी तुम्हारा तो चला-चली का नहीं है, तुमसे तो बहुत उम्मीद है। राष्ट्र को बहुत उम्मीद है और समाज को बहुत उम्मीद है। मिशन को बहुत उम्मीद है, जिसके कि आप अनुयायी हैं। जिसके कि आप बालक हैं। मैं कभी अनुयायी शब्द नहीं कहती हूँ। मैं परिजन शब्द कहती हूँ। परिजन माने सभी वर्ग के लोग मिल जाते हैं बगैर किसी भेदभाव के, बगैर किसी जातिवाद के परिजन अर्थात सभी। परिजन में सभी आ जाते हैं, तो हमारे आप परिजन हैं।

आप हमारे बेटे और बेटी हैं, हम आपसे आशा करेंगे और निवेदन भी करेंगे और निवेदन नहीं मानेंगे, तो फिर तीसरा रास्ता मैंने बता ही दिया था। फिर और दूसरा हथकंडा अपनाएँगे, फिर हम एक और रूप धारण करेंगे। कौन-सा? जब आप सोएँगे न, तो आपके घर जाया करेंगे? घर जाया करेंगे और स्वप्न में आया करेंगे और चुपके से आपके कानों को मरोड़ दिया करेंगे और जब हम नहीं रहेंगे, तो हम और गुरुजी आपके यहाँ भूत बनकर आएँगे। बस, जिधर की आप आँख खोलेंगे, उधर हम ही दोनों दिखाई पड़ेंगे। तो क्यों कर हम भूत बनें और आपको डराने आएँ।

मिशन का मत्स्यावतार

सारी जिंदगी तो हमने प्यार लुटाया, सारी जिंदगी तो हमने आपको छाती-से लगाया और फिर मर करके हम आपके लिए भूत बनें, नहीं भूत मत बनवाना। इसमें हमारी बेइज्जती है। हम तो सारे ब्रह्मांड में समा जाएँगे और वह शक्ति उत्पन्न करेंगे, जो शक्ति गुरुजी ने उत्पन्न की। जो प्रचंड शक्ति आज दिखाई पड़ रही है, उसको तीन साल हो गए। अब चौथा साल हो जाएगा; लेकिन वह शक्ति ऐसी विद्यमान हुई कि देखते-ही-देखते इतना विस्तार हो गया कि मिशन का क्या कहना।

जिस तरीके से भगवान मनु के हाथ में एक मछली आ गई और मछली ने यह कहा कि मुझको यह गवारा नहीं है, तो उन्होंने कमंडलु में डाल दिया

और कमंडलु में से भी उसने आवाज दी कि भगवन्! मुझे कमंडलु में मत रखिए। तो उन्होंने कहा—कहाँ डालें? उन्होंने तालाब में डाल दिया। उसने कहा—नहीं, तालाब भी छोटा है, तालाब भी नहीं चाहिए, मुझे तो क्या चाहिए? उसे समुद्र में डाल दिया अर्थात उसका विस्तार हो गया।

बेटे! मिशन का विस्तार हो गया। वह समुद्र के तरीके से बढ़ता हुआ चला जा रहा है। हिमालय की ऊँचाई नापता हुआ चला जा रहा है और सागर की गहराई नापता हुआ चला जा रहा है, आगे और भी इसका विस्तार होने वाला है; लेकिन इसके लिए आपको खड़ा होना पड़ेगा। जो भी यहाँ उपस्थित हैं, मेरा केवल गायत्री परिवार से ही कहना नहीं है। मेरे परिवारी वे भी हैं, जो इसमें नहीं बैठे हैं, वे भी हैं।

गायत्री परिवार तो है ही, इसमें तो दो राय नहीं हैं। उस पर तो मेरा अंकुश भी है और सब पर तो अंकुश नहीं है। इन पर तो मेरा अंकुश है और मेरा अधिकार है। मैं अधिकारपूर्वक इनसे कह सकती हूँ; लेकिन जो भी यहाँ बैठे परिजन हैं, उनको भी मैं अपना ही कह सकती हूँ और मैं चाहती हूँ कि पूरे गुजरात में आप एक ऐसी फिजा फैलाएँ, जिससे नारी जागरण से लेकर जो हमारी पढ़ी-लिखी बेटियाँ हैं, वे बगैर पढ़ी-लिखी महिलाओं को बताएँ, सिखाएँ। उनका मनोबल बनाएँ और शिक्षा के साथ-साथ विद्या-विस्तार का मतलब समझाएँ।

विद्या-विस्तार का मतलब है—गुण, कर्म और स्वभाव में परिवर्तन। यदि यह नहीं बदले, तो अक्षर पढ़ लिए, तो क्या हुआ? अक्षर पढ़ने से कुछ नहीं होता। नौकरी मिल जाएगी। गुण, कर्म और स्वभाव में यदि आपने परिवर्तन कर लिया है, तो फिर तो आप महान हो गए। महानता की ओर चलिए, आप नीचे की ओर मत देखिए और अमीरों की तरफ मत देखिए, गरीबों की तरफ देखिए। उनकी तरफ देखिए, जिनके पास रोटी भी मुहैया नहीं है, हम कम-से-कम रोटी तो खा रहे हैं, छप्पर के नीचे बैठे तो हैं, जो बिचारे सड़कों पर पड़े रहते हैं, हम उनकी तरफ नहीं देखते।

दो पड़ोसी राजा, महाराज विदूरथ एवं सिंधुराज सत्यनिष्ठ व माता भगवती के आराधक थे। एक दिन दोनों में इस विषय पर बहस छिड़ गई कि दुनिया में सबसे शक्तिशाली कौन है? कुछ निर्णय न होता देख दोनों ऋषि सुक्षीण के पास पहुँचे। ऋषि ने दोनों का सत्कार किया और उनकी जिज्ञासा सुनी।

उनकी जिज्ञासा सुनकर वे मुस्कराए और बोले—"राजन्! दुनिया में सबसे शक्तिशाली और सबसे कमजोर मन ही है। जिसका अपने मन पर संपूर्ण अधिकार हो जाता है, उसके आगे शक्ति-सामर्थ्य के सारे मार्ग खुल जाते हैं और जो अपने मन को ही काबू में नहीं कर पाता, वो दीन-दुर्बल और असहाय ही बना रहता है।"

हम किसकी तरफ देखते हैं? हम धनवान की तरफ देखते हैं। हाँ साहब! इसके पास इतनी संपत्ति है, क्या करें? संपत्ति है, बनी रहेगी। उनके पास संपत्ति है, तो उस संपत्ति से हमें क्या करना? हमें तो जो भगवान ने दिया है, उसमें ही संतोष करना चाहिए और इसमें से भी जरूरतमंद को खिलाना चाहिए।

छोटे का मतलब है—जो हम से ज्यादा छोटे हैं और जो जरूरतमंद हैं, उनका पहला हक बनता है। एक कहानी सुना करके मैं फिर इसको बंद कर दूँगी। एक नेवला था। तो महाभारत में जब यज्ञ हुआ। तो वह नेवला आया और जहाँ पर भगवान कृष्ण सबके पैर धो रहे थे, उस पानी में लेट रहा था। तो युधिष्ठिर ने कहा कि अरे नेवले, यह तू क्या कर रहा है इधर-से-उधर? उसने कहा—देखिए ऐसा है, मैंने सुना था कि यह महान यज्ञ है और इस महायज्ञ में मैं अपना आधा शरीर जो मेरा सोने का हो गया था, आधा शरीर नहीं हुआ। तो मैं इस आधे शरीर को सोने का करने आया हूँ। पहले एक ऐसा यज्ञ हुआ था, जिसमें मेरा आधा शरीर सोने का हो गया था।

भावनाओं का यज्ञ

उन्होंने कहा—वह कौन-सा यज्ञ था, जरा बताना? इसमें तू रो रहा है कि मैं सोने का नहीं हुआ, उसमें तू सोने का कैसे हो गया, यह बता? तो उसने बताया कि एक ब्राह्मण परिवार था। पति-पत्नी थे, दो बच्चे थे और कई दिन के भूखे थे। उनके पास कुछ नहीं था। अंत में कहीं से थोड़ा-सा आटा आ गया और उन्होंने रोटी बनाई। चारों रखकर खाने बैठे थे, तभी एक व्यक्ति आया।

उसने कहा कि मैं तुमसे भी ज्यादा भूखा हूँ। तुम एक सप्ताह के भूखे हो, मैं दो सप्ताह का भूखा हूँ, तो उन्होंने झटपट उठकर कहा—आइए अतिथि। आप का हिस्सा पहला है, पहले आप खाइए, पीछे हम खाएँगे; क्योंकि हम सात दिन के भूखे हैं और आप पंद्रह दिन के भूखे हैं, रोटी पर पहला हक आपका ही है और वह चारों रोटी खा गए। भगवान ने यह परीक्षा ली थी, भगवान हर रूप में आता रहा है।

भगवान भारत में हर रूप में आता रहा है। भगवान प्रेरणा के रूप में आता रहा है। वह तो हर रूप में आते रहे हैं। हम गुरुजी को भगवान कहते हैं। कोई मानें या न मानें, कोई न मानें तो मत मानें, हमें उनसे क्या लेना-देना है? लेकिन मैं तो बताती हूँ, मैंने कल भी बताया था कि मैंने उनके व्यक्तित्व में झाँककर देखा कि भगवान के अलावा वे कुछ नहीं हो सकते; क्योंकि उन्होंने वही काम किया, जो कि भगवान को करना चाहिए था।

वही कार्य उन्होंने किया, जो भगवान बुद्ध ने अपने समय में किया और उनका छूटा हुआ कार्य गुरुजी ने अपने समय में किया और जो छोड़ गए हैं, उसका विस्तार अब हम करेंगे। उसका विस्तार करना हमारी जिम्मेदारी है तो नेवले ने कहा कि जब वह खा चुका, तो ब्राह्मण ने उसके हाथ धुलाए और कुल्ला कराया। उस पानी में जब मैं लेटा, तो मेरा आधा शरीर सोने का हो गया।

उनने कहा कि ऐसा महायज्ञ; चूँकि भावनाओं से ताल्लुक रखता है, संवेदना से ताल्लुक रखता है। आप भी इस यज्ञ में शामिल हो रहे हैं? अश्वमेध यज्ञ में शामिल हुए हैं, तो आप भी अपनी संवेदना पैदा करना, अपनी क्षुद्रताओं को, अपनी नीचताओं को, आपके अंदर कोई दोष और दुर्गुण हों, तो कृपा करके उन्हें यज्ञकुंड में होम करके जाना और आप अग्नि के तरीके से, धधकते हुए अंगारे के तरीके से प्रज्वलित होकर के जाना। फिर देखिए हम देश का कल्याण करते हैं या नहीं करते। हम सारे राष्ट्र को यदि एक सूत्र में बाँधकर न दिखा दें, तो फिर चाहे जो कहना।

बेटे! हम एक सूत्र में बँधे हैं, हम हिम्मत रखते हैं और हम यह करके दिखाएँगे। उसमें आप लोगों के सहयोग की आवश्यकता है—सहयोग तो हम आपको देंगे। आपको चलना है,

आपको करना है, आगे बढ़कर आप श्रेय लीजिए। श्रेय हम आपको देंगे, हम परदे के पीछे काम करेंगे। हमारे पास सब आते हैं, एकोएक पार्टी के, सब पार्टियों के लोग आते हैं। कौन नहीं आते? सब आते हैं। जिसमें सनातनी भी हैं और आर्यसमाजी भी हैं और जिसमें राजनेता भी हैं, सभी शामिल हैं। वह सभी हमारे अपने हैं। हमसे किसी को विरोध हो, तो बना रहे, हम किसी के लिए क्या करें? हम उसको कैसे समझाएँ और हमें जो करना है, करेंगे।

गुरुजी ने एक पुस्तक लिखी थी—'स्त्रियों का गायत्री अधिकार' तो उस पर जितने सनातनी थे, सब विरोध करने लगे। सबने इतना डटकर विरोध किया कि अब जिंदा भी छोड़ेंगे, कि नहीं छोड़ेंगे; लेकिन उन्होंने कहा कि नहीं, इनके परदे उठा करके मानूँगा। जो महिलाएँ परदा करती हैं, तो परदा उठाकर मानूँगा और इनको यज्ञोपवीत पहनाकर मानूँगा, यज्ञशाला में बिठाकर के दिखा दूँगा और उन्होंने यज्ञशाला पर बाकायदे बिठाया।

आज जो जनसमुदाय हमारे सामने बैठा है, इसमें कितनी हमारी बहनें हैं, जो हमारे यज्ञ में शामिल हो रही हैं और केवल यज्ञ में शामिल नहीं हो रही हैं; बल्कि यज्ञ कराती भी हैं। ये वेदपाठी भी हैं, जो शादियाँ भी कराती हैं। यज्ञोपवीत संस्कार भी कराती हैं। पुंसवन संस्कार भी कराती हैं। हमारे साथ ये जो हमारी बहने हैं, जो हमारी बच्चियाँ बैठी हैं, इनके अंदर कितना साहस है, यह देखते ही बनता है। हमारे ये बच्चे बैठे हैं, जो हमारे परिजन बैठे हैं।

परिजन का मतलब फिर समझना, यह सबके लिए है, नहीं तो फिर कहेंगे कि आज माताजी ने तो अपने ही बच्चों के लिए कहा है। अपने नहीं बेटे, अपनों के लिए ही नहीं कहा है, सबके लिए कहा है। हम तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को मानते हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' अर्थात सारी वसुधा हमारा कुटुंब है। सारी वसुधा में हम समाये हैं और सारी वसुधा हमारे अंदर समायी हुई है। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करती हूँ।

॥ शांतिः ॥

एक बार देवता मनुष्यों के किसी व्यवहार से क्रुद्ध हो गए। क्रोधित होकर उन्होंने दुर्भिक्ष को धरती पर भेजा और पृथ्वीवासियों को सबक सिखाने को बोला। दुर्भिक्ष ने अपना विकराल रूप धारण किया और दूर-दूर तक सूखा फैल गया। अन्न-जल के अभाव में मनुष्य मृत्यु का ग्रास बनने लगे।

अपनी सफलता का निरीक्षण करने दुर्भिक्ष दर्पपूर्वक निकला तो उसने देखा कि एक जीर्ण-शीर्ण मनुष्य कहीं से पाई एकमात्र रोटी को एक मरणासन्न कुत्ते को खिला रहा था। यह दृश्य देखकर दुर्भिक्ष का हृदय पिघल गया। उसने अपने को समेटा और वापस अपने लोक चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने देवताओं से कहा—''जहाँ संवेदना जीवित है, वहाँ परमात्मा उपस्थित है और वहाँ मैं प्रकोप फैलाने की सामर्थ्य नहीं रखता।''

राष्ट्रीय मंच पर प्रतिष्ठित हुआ विश्वविद्यालय

वसुधैव कुटुम्बकम् की पूज्य गुरुदेव की अवधारणा को मूर्तरूप प्रदान करने का कार्य देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्रुतगति से कर रहा है। इसी रचनात्मक विकास की ओर आगे बढ़ते हुए यूरोप के लाट्विया में स्थित लाट्विया सांस्कृतिक अकादमी एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार के मध्य नए अनुबंध की स्थापना की गई, जिसके तहत सौहार्दपूर्ण मैत्री, संयुक्त विश्वास एवं पारस्परिक विकास हेतु संस्कृति, शिक्षा एवं शोध-क्षेत्रों में नवाचार आयामों हेतु एक मील का पत्थर स्थापित किया गया।

यह अनुबंध शिक्षा, अनुसंधान, समाज सेवा, संस्कृति आदि के पुनरुत्थान में कारगर साबित होगा। इसके चलते दोनों विश्वविद्यालयों के मध्य समय-समय पर संयुक्त अनुसंधान कार्य, पुस्तक लेखन, विद्यार्थी एवं शोधार्थियों को दोनों संस्थानों में अपनी शिक्षा एवं शोध को पूरा करने का अवसर मिलेगा व साथ ही दोनों विश्वविद्यालयों के मध्य पारस्परिक शिक्षा, सांस्कृतिक सहयोग, प्रगतिशील एवं रचनात्मक शिक्षा प्रयोगों का विकास, कार्यशाला व सम्मेलनों का आयोजन, शोधात्मक परियोजना एवं कार्यक्रम का संचालन आदि जैसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाएगा।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार एवं काज़ीमीयेर्ज़ वील्की विश्वविद्यालय, पोलैंड के मध्य नवाचार आयामों को खोलते हुए इरास्मस प्लस के अंतर्गत नए अनुबंध की स्थापना की गई। जीवन विद्या के आलोक केंद्र देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं काज़ीमीयेर्ज़ वील्की विश्वविद्यालय, पोलैंड के संयुक्त प्रयास से आने वाले समय में शिक्षा एवं सांस्कृतिक विस्तार हेतु सृजनात्मक कार्य करेंगे।

अंतरराष्ट्रीय शैक्षणिक सहयोग को बढ़ावा देने हेतु देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति महोदय द्वारा रोमानिया के ओराडिया विश्वविद्यालय के साथ एक अनुबंध किया गया। इस अनुबंध के अंतर्गत, छात्र और शोधकर्त्ताओं को विभिन्न अंतराल में दोनों विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होगा। दोनों संस्थानों द्वारा संयुक्त सम्मेलन के प्रभावी आयोजन के माध्यम से, शिक्षा और अनुसंधान लक्ष्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होगा।

पिछले वर्षों में अनेकों प्रयासों से आयोजित विभिन्न कार्यशाला एवं शैक्षणिक गतिविधियों की सफलता के पश्चात लिथुआनिया स्थित वितौतस मैगनस् विश्वविद्यालय एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मध्य अनुबंध को पुनर्स्थापित किया गया। वर्ष 2018 से प्रारंभ करते हुए अनेकों विद्यार्थी एवं शोधार्थियों ने विभिन्न समय पर इन दोनों विश्वविद्यालयों में अध्ययन कार्य संपन्न किया है।

विशिष्ट अतिथियों के आगमन के क्रम में आध्यात्मिक विचारधारा के प्रणेता एवं प्रचारक स्वामी विश्वेश्वरानंद गिरि जी महाराज का देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आगमन हुआ। इस मौके पर उनका स्वागत करते हुए प्रतिकुलपति जी ने

उनका सम्मान किया एवं उनके साथ विभिन्न आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा की।

विदित हो कि स्वामी विश्वेश्वरानंद गिरि जी महाराज ने अपने उत्कृष्ट आध्यात्मिक योगदान से लोगों का मार्गदर्शन किया है। प्राचीन सिद्धपीठ सूरतगिरि बँगला कनखल हरिद्वार और संन्यास आश्रम विले पार्ले पश्चिम मुंबई जैसे कई महत्त्वपूर्ण संस्थानों में अध्यक्ष के पद पर कार्य किया है।

श्री माता वैष्णो देवी श्राइन बोर्ड कटरा के सदस्य के रूप में भी नियुक्ति के साथ वे श्री माता वैष्णो देवी गुरुकुल कटरा के अध्यक्ष भी हैं। श्रीराम जन्मभूमि आंदोलन में उन्होंने शुरू से ही सक्रिय भूमिका निभाई है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय में बेंगलुरु स्थित आर०के० विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति प्रोफेसर (डॉ०) वाई एस आर मूर्ति जी का भी सपरिवार आगमन हुआ। प्रतिकुलपति महोदय से शिष्टाचार भेंट के दौरान माननीय प्रोफेसर मूर्ति जी को अखिल विश्व गायत्री परिवार एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय की गतिविधियों से परिचित कराया गया।

अंतरराष्ट्रीय भारत गौरव सम्मान से सम्मानित एवं संस्कृति युवा संस्था के अध्यक्ष सुरेश मिश्रा जी का भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आगमन हुआ। आगमन पश्चात अखिल विश्व गायत्री परिवार के युवा प्रतिनिधि एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति महोदय से शिष्टाचार भेंट हुई।

भेंटवार्त्ता के दौरान सुरेश मिश्रा जी को अखिल विश्व गायत्री परिवार एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय की गतिविधियों से परिचित कराया गया। भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार एवं नवसृजन की गतिविधियों की माननीय पं० सुरेश मिश्रा जी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित प्रतिस्पर्धाओं के क्रम में योग के माध्यम से उत्कृष्टता की प्राप्ति को सुनिश्चित करते हुए अंतर विश्वविद्यालय योगासन प्रतियोगिता में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के योगियों ने उच्चस्तर की प्रतिस्पर्धा में प्रतिष्ठा अर्जित की।

इस प्रतियोगिता में उत्तर-पूर्व जोन से सभी विश्वविद्यालयों के योगार्थियों ने भाग लिया। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिनिधित्व में, पुरुष वर्ग ने तीसरा स्थान और महिला वर्ग ने चौथा स्थान हासिल किया। पुरुष वर्ग की एकल प्रतियोगिता में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के हिमांशु ने दूसरा स्थान प्राप्त किया।

इसके पश्चात ऑल इंडिया यूनिवर्सिटी योगासन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था, जिसमें पुरुष वर्ग ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया। प्रतिभागियों द्वारा छठा स्थान हासिल कर खेलो इंडिया योगासन प्रतियोगिता के लिए क्वालीफाई भी किया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग के प्रथम, द्वितीय और तृतीय वर्ष के छात्र-छात्राओं ने श्रीनाथ विश्वविद्यालय, जमशेदपुर के 7वें अंतरराष्ट्रीय हिंदी महोत्सव में विभिन्न प्रतियोगिताओं में प्रतिभाग किया। इसमें उनका प्रदर्शन उत्कृष्ट रहा।

सांस्कृतिक कार्यक्रम की शृंखला में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में अंतरराष्ट्रीय संगीत संस्थान स्पीक मैके के द्वारा संगीत कार्यक्रम का आयोजन हुआ। इस अवसर पर सुप्रसिद्ध संतूर वादक सतीश व्यास जी द्वारा सुमधुर शास्त्रीय संगीत प्रस्तुत किया गया। कार्यक्रम से पूर्व सतीश व्यास जी ने विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से सदाचार भेंट भी की। कार्यक्रम के अंत में सतीश व्यास जी ने उपस्थित विद्यार्थियों से संगीत संबंधी विषय पर चर्चा भी की।

राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग 2024 में परीक्षा पर्व 6.0 का आयोजन कर रहा है, जिसमें विद्यार्थियों के लिए ऑनलाइन क्विज, राज्य/जिले स्तर के कार्यक्रमों के माध्यम से माता-पिता और शिक्षकों को विशेष प्रशिक्षण देना सम्मिलित है।

प्रतिकुलपति जी के मार्गदर्शन में देव संस्कृति विश्वविद्यालय से इस विशेष कार्यशाला में 5 सदस्य सम्मिलित हुए। कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य बच्चों को परीक्षा से संबंधित तनाव को परिहार करने में सहायक होना और परीक्षा संबंधी दबाव को कैसे कम किया जाए, जैसे विषय रहे।

राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग, भारत सरकार द्वारा आयोजित इस प्रशिक्षण कार्यशाला में पूरे देश के विभिन्न प्रांतों से लगभग 200 से ज्यादा शिक्षक, प्रोफेसर एवं लोगों ने हाइब्रिड माध्यमों से अपना योगदान दिया।

ये सारे प्रतिभागी अलग-अलग शैक्षणिक संस्थानों से चयनित थे, जो कि शिक्षा के क्षेत्र में कई रचनात्मक एवं प्रयोगात्मक अभियानों में नवाचार माध्यमों से युवाओं के सकारात्मक विकास हेतु संकल्पित कार्य कर रहे हैं।

इस एक दिवसीय कार्यशाला का उद्घाटन माननीय अध्यक्ष श्री प्रियंक कानूनगो जी द्वारा प्रशिक्षण कार्यशाला की संकल्पना, स्वरूप एवं महत्त्व पर विस्तृत प्रकाश डालकर किया गया। इस प्रशिक्षण कार्यशाला के मुख्य बिंदुओं पर प्रकाश डालते हुए अध्यक्ष महोदय ने प्रतिभागियों को विद्यार्थियों में परीक्षा एवं शैक्षणिक तनाव की समस्या के समाधान के प्रति जागरूक किया। कार्यक्रम का समापन सत्र अनेकों प्रतिभागियों की जिज्ञासाओं एवं प्रश्नों का समुचित समाधान भी किया गया।

प्रतिष्ठित यू ट्यूब चैनल स्टोरीटेलर्स की टीम प्रतिकुलपति जी के साक्षात्कार के लिए देव संस्कृति विश्वविद्यालय पहुँची। प्रतिकुलपति जी ने विश्वविद्यालय के उद्देश्य—भारतीय संस्कृति के मूल्यों का प्रचार और वैश्विक, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक पुनर्जागरण की चर्चा की।

इसके साथ ही विद्यार्थियों के बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास में प्राचीन शिक्षापद्धतियों के महत्त्व की बात का भी प्रतिकुलपति जी ने इस साक्षात्कार में उल्लेख किया। ❑

एक व्यक्ति संत रामतीर्थ से मिलने पहुँचा और उनके चरणों में गिरकर रोते हुए कहने लगा—''महाराज! मैंने लोगों का खूब भला किया, पर किसी ने भी मेरी भलाई का उत्तर नहीं दिया। मुझे जीवन भर उपेक्षा ही मिली।'' रामतीर्थ बोले—''मित्र! बादलों को देखते हो, वे जीवन भर एक जगह से पानी उठाकर दूसरी जगह गिराते हैं। पेड़ जीवन भर कष्ट उठाकर दूसरों को छाया और फल देते हैं। नदी तमाम कठिनाइयों से गुजरकर भी लोगों की प्यास बुझाती है। धरती सारा बोझ सहन कर भी लोगों के जीवन में खुशियाँ लाती है। इनका किसने क्या भला कर दिया ? लोग पेड़ों को काटते हैं, धरती पर मल-मूत्र करते हैं, नदियों को गंदा करते हैं, पर इस कारण वे दूसरों का भला करना नहीं छोड़ते। बदले की भावना से किया गया भला, एक तरह का व्यापार है और निष्काम भाव से किया गया भला ही परोपकार है। इस मार्ग पर चलोगे तो सदा संतुष्ट रहोगे।'' धर्म का मर्म उस व्यक्ति की समझ में आ गया।

सूक्ष्मजगत् की सुव्यवस्था

सूक्ष्मजगत् से अंतर्जगत् की उपलब्धियों का क्रियान्वयन होता है। सूक्ष्मजगत् देवताओं-उपदेवताओं का कार्य-क्षेत्र है। इसका धरती की जीवन-व्यवस्था से घनिष्ठ संबंध है। यह संबंध यज्ञ के माध्यम से और भी सुचारु व सुव्यवस्थित होता है। तभी तो श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में इस समूचे विज्ञान-विधान को स्पष्ट करते हुए कहा है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥
देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥

प्रजापति ब्रह्मा ने कल्प के आदि में यज्ञसहित प्रजाओं को रचकर उनसे कहा कि तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित सुख-भोग प्रदान करने वाला हो। तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा देवताओं को उन्नत करो और वे देवता तुम लोगों को उन्नत करें। इस प्रकार निस्स्वार्थभाव से एकदूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे।

यज्ञ का दर्शन, विज्ञान-विधान विस्मृत हो जाने के कारण ही सूक्ष्मजगत् एवं स्थूलजगत् के संबंधों में भारी अव्यवस्था आ गई। इसी वजह से जीवनचक्र व सृष्टिचक्र गड़बड़ा गया। परमपूज्य गुरुदेव ने इस सत्य को समझकर ही इस अव्यवस्था को सुव्यवस्था में बदलने के लिए भारी प्रयत्न किया। उनके दशकों तक किए गए इस श्रम-प्रयास का ही परिणाम घर-घर में गायत्री और यज्ञ के रूप में दिखने लगा लेकिन अभी भी बहुत कुछ बाकी रह गया था। अंतर्जगत्, सूक्ष्मजगत् एवं बाह्यजगत् के टूटे-बिखरे सूत्रों को, फिर से जोड़ना था। इनकी अव्यवस्था को सुव्यवस्थित करना था। आसुरी अँधियारे एवं उपद्रवों के साथ यह सब कुछ सहज न था। इसी उद्देश्य के लिए उन्होंने सन् 1990 की गायत्री जयंती को शरीर छोड़ा।

इससे पहले इसी वर्ष की यानी कि 1990 ई० की वसंत पंचमी को सभी गायत्री परिजनों को

अंतर्जगत्, सूक्ष्मजगत् एवं बाह्यजगत् के टूटे-बिखरे सूत्रों को, फिर से जोड़ना था। इनकी अव्यवस्था को सुव्यवस्थित करना था। आसुरी अँधियारे एवं उपद्रवों के साथ यह सब कुछ सहज न था। इसी उद्देश्य के लिए उन्होंने सन् 1990 की गायत्री जयंती (2 जून, 1990) को शरीर छोड़ा।

आग्रहपूर्वक बुलाकर भेंट-मुलाकात की और भावी योजना को स्पष्ट करते हुए लिखा—"**वसंत पंचमी पर महाकाल का संदेश**'। जिन्होंने इसे पढ़ा होगा, उन्हें इसमें लिखी हुई पंक्तियाँ आज भी स्मरण होंगी। इस पत्रक में उन्होंने लिखा था कि 'वर्ष 2000 ई० के बाद हम ब्राह्मी चेतना के साथ एकाकार होकर कार्य करेंगे। ब्राह्मी चेतना—जीवन व जगत् की सर्वोच्च कक्षा है। यह अंतर्जगत् का उच्चतम तल है। यहाँ रहकर जीवन व जगत् की सभी परतों को सुधारा, सँवारा जा सकता है।'

उनके इसी साधना सत्य को बताने-समझाने के लिए इस विशिष्ट लेखमाला में अंतर्जगत्, सूक्ष्मजगत् एवं बाह्यजगत् की चर्चा की जा रही है। ताकि अपने सभी परिजन, अपने आराध्य की शतवर्षीय साधना का अर्थ व मर्म जान सकें। सूक्ष्म जगत् की चर्चा, चिंता व चिंतन करते हुए हम यह तो जान सके कि यह देवताओं-उपदेवताओं का कार्यक्षेत्र है। इनकी संख्या भले ही कितनी हो, परंतु इनके प्रधान कार्यकेंद्र केवल तैंतीस हैं। इसीलिए पुराण कथाओं में तैंतीस कोटि देवताओं की चर्चा मिलती है।

अगर इन तैंतीस की गणना की जाए, तो (1) ग्यारह रुद्र, (2) बारह आदित्य, (3) अष्टवसु एवं (4) दो अश्विनीकुमार यानी कि कुल मिलाकर तैंतीस की गणना पूरी होती है। ऐसा नहीं है कि देवता और नहीं हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, वायु, कुबेर, धन्वंतरि आदि भी महत्त्वपूर्ण देवशक्तियाँ हैं, जिनके अपने-अपने महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। ये सभी कार्य यदि सुव्यवस्थित रीति से संचालित हो सकें, तो धरती पर मानव जीवन कभी भी संकटापन्न न होगा।

हालाँकि धरती का जीवन विषम-विपन्न एवं विषमय है। ऐसा केवल इसलिए है; क्योंकि सूक्ष्मजगत् की व्यवस्था न तो सुचारु है और न व्यवस्थित। जबकि इसे ऐसा होना चाहिए। इसकी वजह यही है कि देवता दुर्बल हैं और असुर समर्थ। पुराणों में, रामायण-महाभारत में देव-असुर संग्राम की अनेकों कथा-कथानियाँ कही गई हैं।

इन्हें पढ़ने पर देवताओं व असुरों के संघर्ष के अनेकों प्रसंग उभरते हैं, जिनसे पता चलता है कि असुरों ने कब, कैसे देवताओं को स्वर्ग से खदेड़ दिया। उनकी संपत्ति व अधिकार हथिया लिए। देवलोक के कार्यकेंद्रों पर बैठकर अपनी मनमानी करने लगे, अपनी मनमरजी चलाने लगे। अभी की स्थिति यही है। तभी तो मानव के क्रियाकलाप आसुरी हो चले हैं। तन-मन-जीवन सभी में इनका प्रवेश हो गया है।

शरीर में रोग, मन में मनोरोगों की भरमार, जीवनशैली में असंख्य विकृतियाँ—ये सब इसी की पहचान हैं। अभी की स्थिति में मानव जीवन में आसुरी उदय व आधिपत्य सब तरफ देखा जा सकता है। गुरुदेव ने इसी उलटे को उलटकर, सीधा करने की बात कही और लिखी थी और गायत्री परिजनों की गायत्री-साधना के साथ अपनी इस सौवर्षीय साधना का एक ही लक्ष्य निश्चित निर्धारित किया था—**'मनुष्य में देवत्व का उदय एवं धरती पर स्वर्ग का अवतरण।'**

अभी की स्थिति में मानव जीवन में आसुरी उदय व आधिपत्य सब तरफ देखा जा सकता है। गुरुदेव ने इसी उलटे को उलटकर, सीधा करने की बात कही और लिखी थी और गायत्री परिजनों की गायत्री-साधना के साथ अपनी इस सौवर्षीय साधना का एक ही लक्ष्य निश्चित निर्धारित किया था—'मनुष्य में देवत्व का उदय एवं धरती पर स्वर्ग का अवतरण।'

ये दोनों एकदूसरे से जुड़े हैं। एक होगा, तो दूसरे का होना तय है और ये दोनों तभी हो पाएँगे, जब सूक्ष्मजगत् में देवों के सभी कार्यकेंद्र सुचारु, सुव्यवस्थित एवं सुसंचालित होंगे। ये सब होने पर

स्वत: ही मानव जीवन में देवत्व का उदय व आधिपत्य हो जाएगा। अभी की स्थिति में जो है और जो होना चाहिए, उसमें रात और दिन का अंतर है। रात में भयभीत होते हुए, ठोकरें खाते हुए गिरना-भटकना पड़ता है। जबकि दिन के उजाले में सब कुछ साफ-साफ नजर आता है। जीवन के मार्ग स्वत: ही खुल जाते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव की सौवर्षीय साधना इसी रात को दिन में बदलने के लिए है। उनकी भाषा में यही उलटे को उलटकर सीधा करना है। प्रकृति में फैलती प्रकाश की किरणें, पहले अंतर्जगत् को अपने रंग में रँगेंगी। इसमें सत्य, सत्त्व व सत की अभिवृद्धि करेंगी। इसके बाद सूक्ष्मजगत् इस प्रकाश से प्रकाशित होगा। इसी के प्रभाव से आसुरी अँधियारे एवं उपद्रवों का समापन होगा। देवों को अपना खोया हुआ वैभव एवं विभूतियाँ प्राप्त होंगी और मनुष्यों को देवों का संपर्क, सान्निध्य व संयोग मिल सकेगा। ऐसा होने पर अव्यवस्था, सुव्यवस्था में बदलेगी। मनुष्य में देवत्व का उदय एवं धरती पर स्वर्ग के अवतरण के सुअवसर बनेंगे।

अभी की स्थिति में यह सब अकल्पनीय-असंभव लगता है। जो हालात अभी के हैं, उनमें ये सारी बातें हास-परिहास जैसी लगती हैं। सबका सब हास्यास्पद लगता है। लेकिन आजादी का अमृत महोत्सव मना चुके हम लोग अपने बुजुर्गों से पूछें, तो वे बताएँगे कि कभी देश की स्वाधीनता की बातें भी हास्यास्पद लगा करती थीं। राजे-रजवाड़ों, जागीरदारों, जमींदारों के वर्चस्व की समाप्ति भी कभी ऐसी ही हास्यास्पद लगा करती थी, लेकिन तब वह सब असंभव लगने वाला संभव हुआ और अब आने वाले वर्षों में यह असंभव भी संभव होगा। स्वाधीनता एक दिन में नहीं मिली थी। उसे पाने में भी लगभग सौ वर्षों तक खपना पड़ा था। इसके लिए भी सौ वर्षों की कठिन तप-साधना को संपूर्ण होना है। प्रश्न किसी एक व्यक्ति अथवा एक परिवार के भाग्य और भविष्य का नहीं है। बात समूची धरती और संपूर्ण मानव जाति के भाग्य व भविष्य की है। इसीलिए इसमें इतना समय लगना था। इसलिए यह लगा। अब तो आने वाले समय में बस उज्ज्वल भविष्य के परिणाम प्रस्तुत होने हैं।

महीनों तक धरती जब सूर्य की तपन से तपती है, तब उसे वर्षा के मेघों की छाया मिलती है। तभी वर्षा की बूँदें तपती-तरसती धरती की प्यास बुझाती हैं और तब जो धरती गरमी के दिनों में सूखी-बंजर लगती थी, उस पर हरियाली छाने लगती है।

कुछ ऐसा ही युग-परिवर्तन का परिदृश्य अगले दिनों धरा-धाम पर दिखने वाला है। सूक्ष्मजगत् में फैलता प्रकाश, धरती पर भी देवों की अमृत वर्षा के रूप में अवश्य अनुभव होगा। बस, इसके लिए सूक्ष्मजगत् को सुव्यवस्थित होने और बाह्यजगत् से इसके सूत्रों के सही होने भर की देर है, जिसे इन दिनों तीव्रता से किया जा रहा है। ❑

युगनिर्माण-अभियान को चरम लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए जहाँ प्रचारात्मक, रचनात्मक, सुधारात्मक उपाय अपनाने और सरंजाम खड़े करने होंगे; वहाँ यह भी ध्यान में रखना होगा कि सूक्ष्मजगत् की अनुकूलता के लिए प्रयत्न करना इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। अन्यथा मात्र भौतिक प्रयत्नों से ही अवांछनीयता के वर्तमान तूफान को रोक सकना कठिन हो जाएगा।

देव संस्कृति दिग्विजय को चल पड़ी चतुरंगिणी

अश्वमेध यज्ञ राष्ट्र एवं विश्व-कल्याण की मंगलभावना से किया जाने वाला एक महान आध्यात्मिक प्रयोग है। विश्व की प्रथम संस्कृति, विश्व संस्कृति, सनातन संस्कृति, देव संस्कृति आदि विभिन्न नामों से प्रचलित व प्रतिष्ठित भारतीय संस्कृति सदैव से ही अपनी विश्वविजयनी वैजयंती वाहक, 'अश्वमेध' की यज्ञाश्व-शक्ति से राष्ट्रमंगल व विश्वमंगल की अहर्निश मंगलभावना व मंगल करती रही है। यह सत्य वेदों, उपनिषदों, पुराणों व अन्यान्य धर्मग्रंथों तथा ऐतिहासिक विवरणों से पुष्ट होता है।

भारतवर्ष के देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के क्रम में सतयुग में राजा पृथु के द्वारा एक सौ अश्वमेध कराने, ऋषभदेव के पुत्र भरत के द्वारा सौ-सौ बार अश्वमेध संपन्न करने, त्रेतायुग में भगवान राम के द्वारा दशाश्वमेध यज्ञ करने, द्वापर में भगवान कृष्ण द्वारा युधिष्ठिर से अश्वमेध यज्ञ कराने का उल्लेख धर्मग्रंथों में है। युधिष्ठिर ने तीन अश्वमेध यज्ञ किए और उस महान परंपरा का निर्वहन राजा परीक्षित तथा जन्मेजय ने भी किया। कलियुग में भी गुप्त वंश के द्वितीय सम्राट समुद्रगुप्त के द्वारा अश्वमेध यज्ञ संपन्न कराने का इतिहास मिलता है।

इसके बाद भारत ने अपनी इस महान सांस्कृतिक-आध्यत्मिक विरासत को शक, हूण, कुषाण, पठान, मुगल, अँगरेज आदि के आगमन व आक्रमण के कारण संक्रमण की स्थितियों से गुजरते हुए देखा। शताब्दियों की चिर-प्रतीक्षा के बाद आधुनिक युग में देवभूमि भारत की पुण्यधरा पर अवतरित गायत्री के सिद्ध साधक, इस युग के विश्वामित्र, अखिल विश्व गायत्री परिवार के संस्थापक, मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण के सूत्रधार व 21वीं सदी उज्ज्वल भविष्य के उद्घोषक परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी व वंदनीया माता भगवती देवी शर्मा जी ने भारत को सशक्त व समृद्ध बनाने व विश्वकल्याण की मंगलभावना से, दैवी सत्ता के निर्देश पर अश्वमेध गायत्री महायज्ञों की पावन शृंखला का सूत्रपात किया व भारत एवं अन्य देशों में भी अश्वमेध यज्ञ संपन्न किए।

देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के उसी क्रम में इन दिनों परमपूज्य गुरुदेव के दिव्य संरक्षण में आश्वमेधिक महायज्ञों की शृंखला फिर से चल पड़ी है और आश्वमेधिक यज्ञों की पावन शृंखला का 47वाँ अश्वमेध यज्ञ अखिल विश्व गायत्री परिवार, शांतिकुंज, हरिद्वार के तत्त्वावधान में 21 से 25 फरवरी के मध्य महाराष्ट्र की राजधानी मुंबई में लाखों याजकों, साधकों व उपासकों की भागीदारी के साथ अपार सफलता के साथ संपन्न हुआ।

परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी के मार्गदर्शन व संरक्षण में सन् 1991 से शुरू हुए अश्वमेध महायज्ञ के पीछे का भाव एक ही था कि भारतीय संस्कृति का पुनर्जागरण संभव हो सके। अश्वमेध का अश्व जहाँ शौर्य, पराक्रम, शक्ति व अदम्य साहस का प्रतीक है तो वहीं मेध प्रखर प्रज्ञा, ऋतंभरा व बौद्धिक उत्कर्ष का प्रतीक है। जहाँ शौर्य और प्रखर मेधा का संयोजन होता है, जहाँ समझदारी और बहादुरी, पराक्रम और पवित्रता, प्रेम और शौर्य, साहस और संवेदना का

सम्मिलित संयोजन व सुयोग होता है—वहीं अश्वमेध की धारा बहती है और वही धारा व्यक्ति, समाज व राष्ट्र में एक नई चेतना को जन्म देती है।

सन् 1991-92 में जब यह अभियान शुरू हुआ तब भारत की तत्कालीन परिस्थितियों में चारों ओर अंधकार दिखता था, भारत संघर्षरत था। धार्मिक परिस्थितियों में पाखंड का बोलबाला था। धर्म को धंधे के रूप में अपना लिया गया था, धर्म का जो प्रयोजन था कि जनजाग्रति हो वो प्रयोजन समाप्त हो गया था।

मंदिर जनजागरण के केंद्र न होकर के पूजा-पाठ के केंद्र व कर्मकांड का केंद्र मात्र बनकर रह गए थे। सांस्कृतिक दृष्टि से भी ऐसा लगता था, जैसे संस्कृति हमारी गुम हो गई है और लोग पश्चिमी संस्कृति की ओर बुरी तरह बढ़े चले जा रहे थे। समाज में दहेज से लेकर के मृतक भोज आदि बहुत सारे पाखंड संव्याप्त थे।

हजारों वर्षों से भारत की गुलामी के कारण जो एक अवसाद था, वातावरण में वो बिना किसी आश्वमेधिक पुरुषार्थ के समाप्त नहीं हो सकता था। इसके लिए बहुत बड़े प्रबल प्रयोग की आवश्यकता थी। डेढ़ हजार साल की गुलामी की जो जंजीरें थीं, जिस गुलामी के परिणामस्वरूप हमारी सांस्कृतिक उदासीनता, अवसाद था, इनसे व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और पूरा विश्व प्रभावित थे। उसको तोड़ने के लिए एक बड़े पुरुषार्थ की आवश्यकता थी।

स्वामी विवेकानंद ने सन् 1893 में जो उद्घोष किया था, उस बात को विश्वभर में पहुँचाने के लिए वंदनीया माताजी ने अथक पुरुषार्थ किया। सांस्कृतिक दिग्विजय, उल्लास, आनंद और सफलता की लहर पैदा करने के लिए 10 से 15 लाख लोगों को एकत्रित करके एक बड़ा आध्यात्मिक प्रयोग किया।

यह प्रयोग सूक्ष्मजगत् के परिशोधन का और सांस्कृतिक सूत्रों को जन-जन तक पहुँचाने का, सांस्कृतिक सूत्रों को और मूल्यों को विश्व के कोने-कोने तक पहुँचाने का रहा।

परमवंदनीया माताजी ने कहा था कि यह वही भारतीय संस्कृति है, जिसने संपूर्ण जगत् को जीना सिखाया है। मनुष्य बन के, मनुष्य के रूप में, मनुष्यता का विकास किया, मूल्यों की स्थापना की है, लोगों को सुसंस्कृत बनाया, सभ्यताओं का विकास किया है। जो सभ्यताएँ विकसित हुईं, उनके मूल में भारतीय संस्कृति के मूल्य ही स्थापित हुए। सभ्यताओं के मूल में जिन मानवीय या सामाजिक मूल्यों की स्थापना है वो मूल्य हमारी संस्कृति से लिए गए प्रेम, करुणा, त्याग, परोपकार के ये मूल्य थे। एकता, ममता और शुचिता के सूत्रों को पूरे विश्व में स्थापित किया।

युगद्रष्टा परमपूज्य गुरुदेव ने एक राष्ट्र, एक धर्म, एक संस्कृति का उद्घोष किया है। जिसका मूल भाव ही वसुधैव कुटुंबकम् है। आश्वमेधिक पुरुषार्थ का प्रयोजन वसुधैव कुटुंबकम् है। सारी दुनिया, सारी धरती एक कुटुंब के रूप में विकसित हो जाए, आत्मवत् सर्वभूतेषु हो जाए, सबके भीतर अपने को देखना शुरू कर दें, इन मूल्यों को लेकर के ही आश्वमेधिक गायत्री महायज्ञों की शृंखला चली। अश्वमेधों के उपरांत से ही एक बड़ा बदलाव हुआ है।

एक बहुत बड़ा परिवर्तन अश्वमेधों से ऊर्जित वातावरण के परिणामस्वरूप विश्व में सकारात्मक परिवर्तन होना शुरू हो गए। इसके उपरांत दुनिया एक बड़े परिवर्तन के दौर में प्रवेश कर गई। अश्वमेध महायज्ञ सूक्ष्मजगत् के शोधन एवं सांस्कृतिक जागरण का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बना।

इसके पश्चात कोविड काल में कोरोना के कारण पूरी मनुष्यता आहत हुई। आदमी का मनोबल टूटा, इसके साथ यह बात भी समझ में आई कि मनुष्य सर्वोपरि नहीं है। ऐसी स्थिति में भगवान सबके स्मरण में आया। कोई-न-कोई बचाने वाला है और हम सबके ऊपर भी कोई है। दुनिया में एक

ऐसी लहर चली, निराशा से मनुष्यता को मुक्त करने के लिए फिर एक आश्वमेधिक पुरुषार्थ की आवश्यकता थी। साथ ही इस समय दुनिया युद्ध की आग से जूझ रही है। चाहे पश्चिम हो या मध्य एशिया हो, चाहे दुनिया का कोई भी भू-भाग, सब तरफ युद्ध-युद्ध की आग लगी दिखाई देती है और दूसरा—सबसे बड़ी चिंता का कारण है आतंक। आतंक भी दुनिया में बहुत तेजी से बढ़ रहा है। तीसरा—नशे की गिरफ्त में पूरी दुनिया पड़ी है। वर्तमान में इस तरह की अनेकों समस्याएँ विद्यमान हैं।

ऐसे समय में वातावरण परिशोधन के उद्देश्य से, वसुधैव कुटुंबकम् को साकार करने के लिए यह सांस्कृतिक दिग्विजय है, सांस्कृतिक चेतना है, इस चेतना के जागरण के लिए मुंबई में अश्वमेध महायज्ञ का आयोजन हुआ, सूक्ष्म में बहुत बड़ी तपश्चर्या हुई, जितने अनुष्ठान संपन्न हुए हैं बड़ी तपश्चर्या से वातावरण का शोधन किया गया।

यज्ञ के माध्यम से देव संस्कृति के दिव्य सूत्रों को सूक्ष्मजगत् में स्थापित किया गया। तपश्चर्या से सूक्ष्मजगत् का शोधन और यज्ञ से देव संस्कृति के सनातन सूत्रों का जनजागरण हुआ। जो पूरी सफलता के साथ में एक अनूठी छाप छोड़कर गया। जिससे दुनिया के आवश्यक विविध प्रयोजन पूरे होंगे।

भगवान राम हमारी सनातन संस्कृति की आत्मा हैं, इन दिनों पूरा देश राममय है। अभी हाल ही में भगवान राम के जन्मस्थान अयोध्या में भगवान राम की प्राण-प्रतिष्ठा हुई। संयुक्त अरब अमीरात में भव्य हिंदू मंदिर की प्राण-प्रतिष्ठा हुई और इसके साथ ही कतर आदि कई देशों में भी राम मंदिर के भव्य निर्माण की योजना साकार होने जा रही है। अस्तु अयोध्या में राम की प्राण-प्रतिष्ठा से उठी राम- लहर भारत ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया को अपनी राम-लहर में ले रही है। यह महज संयोग नहीं, बल्कि दैवी योजना है।

आज पूरे देश में रामोत्सव ने राष्ट्रोत्सव का रूप ले लिया है। रामराज्य की स्थापना और सतयुग की वापसी एक सुनिश्चित भवितव्यता है, जो पूरी होकर रहेगी। यह सुखद है दैवी संयोग ही है कि राम जन्मभूमि अयोध्या में रामलला की प्राण-प्रतिष्ठा के बाद अब मुंबई के अश्वमेध यज्ञ का आयोजन हुआ। यह जन-जन के मनों में देव संस्कृति की प्रतिष्ठा का, करुणा, प्रेम व संवेदना आदि दिव्य भावों के अभिवर्द्धन के निमित्त एक विराट आध्यात्मिक अनुष्ठान के रूप में संपन्न हुआ।

भगवान राम ने भी राज्याभिषेक के बाद राम-राज्य की स्थापना के लिए अश्वमेध महायज्ञ संपन्न किए थे। युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने भी रामराज्य अर्थात धर्मपरायण, ईश्वरीयभावयुक्त, आदर्श गुणों व सतयुगी समाज की रचना के लिए अपने हिमालयवासी गुरु के निर्देश पर भारत के साथ अन्य देशों में भी गायत्री अश्वमेध महायज्ञों की शृंखला का सूत्रपात किया। इस महायज्ञ में लाखों लोगों ने प्रतिभाग किया और अश्वमेध यज्ञ के दिव्य भावों से अनुप्राणित हुए। यह वास्तव में न सिर्फ मुंबई, बल्कि पूरे देश के लिए गौरव का पल रहा।

भगवान श्रीराम वास्तव में उच्च आदर्शों, सद्गुणों, सद्भावों, धर्म, संस्कृति के प्रतीक हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि धर्म, संस्कृति, मर्यादा, आदर्शों एवं सद्गुणों पर अधारित समाज ही रामराज्य है। रामराज्य का अभिप्राय है धर्ममय, मर्यादापूर्ण, सद्गुणों से भरा-पूरा समाज। एकता, समता और सुचिता से परिपूर्ण समाज। रामराज्य को पुनः स्थापित करने के लिए आधुनिक युग में पूज्य गुरुदेव ने मानव में देवत्व एवं धरती पर स्वर्ग-अवतरण के लक्ष्य को लेकर युग निर्माण योजना का सूत्रपात किया। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए युग निर्माण सेना तैयार कर उसको अखिल विश्व गायत्री परिवार के नाम से सुशोभित किया।

धर्मतंत्र के माध्यम से लोक-शिक्षण की व्यवस्था को आधार बनाते हुए युग निर्माण योजना के लक्ष्य को साकार करने के लिए सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन, दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन की कार्ययोजना शांतिकुंज हरिद्वार के माध्यम से सप्तक्रांति आंदोलन की रूपरेखा बनाई गई। सप्तक्रांति में साधना, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलंबन, पर्यावरण, व्यसनमुक्ति एवं कुरीति उन्मूलन एवं नारी जागरण के महान उद्देश्य को लेकर ही गायत्री महायज्ञ व अश्वमेध गायत्री महायज्ञ संपन्न किए जाते रहे हैं।

निष्कर्ष रूप में कहें तो स्वच्छ भारत, स्वस्थ भारत, सशक्त भारत, समर्थ भारत, समृद्ध भारत, नशामुक्त भारत, व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण, समाज निर्माण, राष्ट्र निर्माण सनातन संस्कृति ही वैश्विक प्रतिष्ठा, मानव में देवत्व का उदय एवं धरती पर स्वर्ग का अवतरण व देव संस्कृति दिग्विजय के महान उद्देश्य को लेकर एक महान आध्यात्मिक प्रयोग व असाधारण आध्यात्मिक अनुष्ठान के रूप में अपार सफलता के साथ अश्वमेध गायत्री महायज्ञ संपन्न हुआ, जिसकी आध्यात्मिक ऊर्जा से लाखों याजक, साधक, उपासक ऊर्जस्वित हुए, अनुप्राणित हुए व पवित्र जीवन जीने को संकल्पित हुए।

नशामुक्ति के लिए लाखों लोगों के संकल्प उभरे, नशे से मुक्त पहले स्वयं और फिर अपने राष्ट्र को, आत्मनिर्माण से राष्ट्रनिर्माण। इस आयोजन की सफलता इससे है कि मुंबई महानगर जो भारत की आर्थिक राजधानी है, इस अर्थतंत्र में धर्मतंत्र का प्रवेश हुआ। अर्थ को पवित्र करने के लिए जैसे हमारे शास्त्रों में कहा गया, धर्म-प्रथम, अर्थ-द्वितीय, काम-तृतीय और मोक्ष-चतुर्थ है। अर्थ का धर्म में प्रवेश हुआ तो धन का सदुपयोग होगा, अर्थप्रधान विश्व में एक धर्म की प्रधानता या धर्म के सूत्रों को प्रवेश अश्वमेध द्वारा हुआ।

विश्व में छाई हुई युद्ध की आँधी को समाप्त करना भी अश्वमेध यज्ञ का प्रयोजन रहा। विश्व में फैल रहे आतंक से लोगों का मन बदलना, ताकि भाई के साथ मनुष्यता, भाईचारे के साथ रह सकें। संपूर्ण विश्व-व्यवस्था में शांति बनी रहे, न्याय और समाधान उभरें। मनुष्य, मनुष्य के साथ मिल-जुल कर रहें, हम पर्यावरण-प्रकृति अनुकूल बनें। मनुष्य में देवत्व का उदय एवं धरती पर स्वर्ग का अवतरण, जैसी परिस्थितियाँ बनें।

इसी क्रम में 21 से 25 फरवरी, 2024 के मध्य खारघर, मुंबई में आयोजित पाँच दिवसीय अश्वमेध महायज्ञ अपार सफलता के साथ संपन्न हुआ, जिसमें अमेरिका, इंग्लैंड, आयरलैंड, अर्जेंटीना, रूस, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, नेपाल आदि 50 देशों एवं भारत के सभी राज्यों से आए लाखों याजक, साधक, उपासक उपस्थित रहे।

इसके अतिरिक्त देश के धर्म, राजनीतिक, खेल, उद्योग, संगीत आदि विभिन्न क्षेत्रों के गणमान्य लोगों ने भी इस महायज्ञ में भागीदारी की। जन-जन में देवत्व का उदय व धरती पर स्वर्गीय वातावरण के निमित्त आयोजित यह महायज्ञ अपूर्व सफलता के साथ संपन्न हुआ।

अखिल विश्व गायत्री परिवार के तत्त्वावधान में 47वें अश्वमेध महायज्ञ का शुभारंभ परंपरा और एकता के प्रतीक लाखों कलशों के साथ निकली विराट कलश यात्रा से हुआ। जिसमें देश-विदेश से आए श्रद्धालुओं ने भी बड़ी श्रद्धा के साथ मस्तक पर कलश धारण किए मुंबई शहर का परिभ्रमण किया।

इस अवसर पर अखिल विश्व गायत्री परिवार प्रमुख श्रद्धेया शैलबाला पण्ड्या जी एवं दलनायक के रूप में उपस्थित डॉ० चिन्मय पण्ड्या जी ने कहा—"जब भी इस दुनिया में महत्त्वपूर्ण काम संभव हो सके हैं, उसके पीछे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से एक ही शक्ति काम करती है, उसका नाम है मातृशक्ति। वो जब जाग जाती है तो हलचल मचा देती है, आज हमारी बहनों ने दिखा दिया कि मुंबई

जैसा शहर, जो भौतिक नगरी है, वहाँ भी अश्वमेध महायज्ञ जैसा सांस्कृतिक-आध्यात्मिक महानुष्ठान का होना संभव हो जाता है।''

इस अवसर पर महाराष्ट्र के माननीय राज्यपाल श्री रमेश बैस जी ने कहा—''जो लोग भी इस विशाल महायज्ञ में शामिल हुए हैं, वे सौभाग्यशाली हैं, ऐसे अवसर बार-बार नहीं आते। जिस ऋषिसत्ता की साधना से यह संभव हो सका है, मैं उस सत्ता के चरणवंदन करता हूँ।''

दलनायक ने कहा—''संपूर्ण राष्ट्र की सांस्कृतिक, आध्यात्मिक चेतना को जगा पाने की शक्ति, सामर्थ्य, बल और संपदा यदि किसी एक के पास विद्यमान है तो वह अश्वमेध गायत्री महायज्ञ में है। अयोध्या में भगवान राम की प्राण-प्रतिष्ठा के पश्चात पहला आध्यात्मिक महानुष्ठान भी है।''

महाराष्ट्र के वन एवं संस्कृति मंत्री माननीय श्री सुधीर मुनगंटीवार जी ने कहा—''मैं महाराष्ट्र का सांस्कृतिक कार्यमंत्री होने के नाते भगवान विट्ठल और छत्रपति शिवाजी महाराज की वीरभूमि पर 50 देशों और भारत के 28 राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों से आए हुए व्यक्ति निर्माण, राष्ट्र निर्माण, युग निर्माण का संकल्प लेकर यहाँ उपस्थित सभी भाई-बहनों का महाराष्ट्र की ओर से, हृदय से स्वागत करता हूँ।''

श्रद्धा और आस्था के महापर्व अश्वमेध महायज्ञ के दूसरे दिन श्रद्धेया शैल जीजी ने देवपूजन व देवावाहन द्वारा कार्यक्रम का शुभारंभ किया। शांतिकुंज के युग पुरोहित व ब्रह्मवादिनी बहनों ने वेद की मंगल ऋचाओं का गायन किया।

लाखों परिजनों को संबोधित करते हुए श्रद्धेया शैल जीजी ने कहा—''जब पर्यावरण असंतुलन और आदि-व्याधि बढ़ जाती है तो उसके शमन व बाह्य और आंतरिक वातावरण की शुद्धि के लिए महान आश्वमेधिक यज्ञों का प्रयोग किया जाता है। तब यह अनिवार्य भी हो जाता है।''

इस अवसर पर माननीय श्री जे०पी० नड्डा जी ने कहा—''गायत्री परिवार के द्वारा आयोजित गायत्री अश्वमेध महायज्ञ में आकर मैं अभिभूत हूँ, नि:शब्द हूँ। आज अखिल विश्व गायत्री परिवार एक विश्व परिवार बन गया है, जो नवचेतना के साथ सिर्फ देश को ही नहीं, बल्कि दुनिया को एक नवचेतना की ओर आगे बढ़ाने का कार्य कर रहा है। इसके लिए गायत्री परिवार की जितनी सराहना की जाए वह कम है।''

महाराष्ट्र के माननीय उप मुख्यमंत्री श्री देवेंद्र फड़णवीस जी ने कहा—''मैं गायत्री परिवार का बहुत-बहुत आभार व्यक्त करता हूँ, इस अति भव्य अश्वमेध महायज्ञ के लिए उन्होंने महाराष्ट्र की भूमि को चुना।''

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने युवाक्रांति तथा अश्वमेध के ऊपर नाटक और प्रज्ञागीत के माध्यम से समाज में संदेश पहुँचाया। नाटक में विद्यार्थियों ने युवाओं के उत्कृष्ट प्रेरणास्रोत को जीवंत किया और उन्हें समाज के सुधार और विकास में अपनी भूमिका का महत्त्व बताया।

अश्वमेध यज्ञ के तीसरे दिन श्रद्धेया शैल जीजी ने 1008 कुंडीय यज्ञशाला में नए साधकों को गायत्री मंत्र की दीक्षा दी। अश्वमेध महायज्ञ के विचार मंच पर माननीय श्री शिवराज सिंह चौहान जी ने कहा—''मैं यहाँ राजनेता होने के नाते नहीं, बल्कि परमपूज्य गुरुदेव के शिष्य के नाते आया हूँ।'' उन्होंने कहा—''आज मैं जो कुछ भी हूँ, परमपूज्य गुरुदेव के कारण ही हूँ।''

भारत सरकार के माननीय रक्षामंत्री श्री राजनाथ सिंह जी ने कहा—''अखिल विश्व गायत्री परिवार द्वारा आयोजित महायज्ञ के दिव्य एवं भव्य आयोजन में उपस्थित होकर मुझे सुखद अनुभूति हो रही है। मैं यहाँ पर स्वयं महसूस कर रहा हूँ कि यहाँ का वातावरण सामान्य नहीं है, बल्कि यहाँ का वातावरण दिव्य आध्यात्मिकता से भरा है।''

महाराष्ट्र के माननीय मुख्यमंत्री श्री एकनाथ शिंदे जी ने कहा—''यह बड़े ही सौभाग्य का क्षण है कि महाराष्ट्र की धरती पर अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया गया।''

अश्वमेध महायज्ञ के चौथे दिन अखिल विश्व गायत्री परिवार प्रमुख श्रद्धेय डॉ० प्रणव पण्ड्या जी ने वीडियो संदेश में कहा—''गायत्री परिवार ने 46 अश्वमेध किए हैं, जो अपने आप में इतिहास है। परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी की कृपा से यह सब संभव हो पाया है। आधुनिक युग की आधुनिक नगरी में हमने अश्वमेध किया यह अपने आप में विशेष महत्त्व रखता है।''

संध्याकाल में विराट दीप महायज्ञ का आयोजन किया गया। देश-विदेश से आए लाखों परिजन अपने-अपने घरों से दीपक इस दीपयज्ञ हेतु लेकर आए और प्रज्वलित किए। यह दीपयज्ञ इतना भव्य स्वरूप लिए रहा, जैसे मुंबई शहर रात के अँधेरे में लाखों दीपकों की रोशनी से जगमगा रहा हो। भगवान राम के अयोध्या लौटने पर जैसा उत्सव त्रेतायुग में हुआ था मानों आज वह दोबारा प्रत्यक्ष घटित हो रहा हो। पूरा परिसर उत्सव, उमंग, आध्यात्मिकता से भर गया।

भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी ने मुंबई अश्वमेध महायज्ञ के समापन अवसर पर विशेष रूप से वीडियो संदेश के माध्यम से गायत्री परिवार के करोड़ों परिजनों को संबोधित करते हुए कहा—''आज की इस पूर्णाहुति के अवसर पर सभी उपासक, सभी समाजसेवी, उपस्थित साधक-साधिकाओ, देवियो और सज्जनो, गायत्री परिवार का कोई भी आयोजन इतनी पवित्रता से जुड़ा होता है, उसमें शामिल होना, अपने आप में सौभाग्य की बात होती है।

''मुझे खुशी है, मैं आज देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित अश्वमेध महायज्ञ का हिस्सा बन रहा हूँ। जब मुझे गायत्री परिवार की तरफ से इस अश्वमेध महायज्ञ में शामिल होने का निमंत्रण मिला, तो समयाभाव के कारण मैं यहाँ आ नहीं पाया, परंतु वीडियो के माध्यम से जुड़कर मुझे खुशी है, प्रसन्नता है। अश्वमेध महायज्ञ, गायत्री परिवार के संस्थापक आचार्य श्रीराम शर्मा के विचारों-भावनाओं को आगे बढ़ा रहा है। गायत्री परिवार का अश्वमेध महायज्ञ सामाजिक संकल्प का एक महाअभियान बन चुका है।''

दलनायक ने कहा—''यह क्षण एक ऐसे उद्घोष को लेकर के आया है, जिसके मूल्य को महत्त्व को हम लोग आने वाले समय में वर्षों तक याद रखने वाले हैं; क्योंकि समय अल्प है और शायद इसके बाद दोबारा यह अवसर हम लोगों को न मिल सके तो उन अनेकों परिश्रमशील गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ताओं को हृदय से धन्यवाद देना चाहता हूँ।''

विदाई समारोह के अवसर पर गायत्री परिवार के परिजनों की एक ओर आँखें नम थीं तो दूसरी ओर राष्ट्रनिर्माण के लिए अपने को समर्पित करने का संकल्प था। ❑

हमारा प्रयोजन समझने में किसी को भूल नहीं करनी चाहिए। हम प्रचंड आत्मशक्ति की एक ऐसी गंगा को लाने जा रहे हैं, जिससे अभिशप्त सगरसुतों की तरह आग में जलते और नरक में बिलखते जन-समाज को आशा और उल्लास का लाभ दे सकें। हम लोक-मानस को बदलना चाहते हैं। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

साधना में सुगति दो माँ

सुगति दो माँ साधना में, श्रेष्ठ चिंतन माँगते हैं।
प्राणवायु क्षीण न हो, सृजन में गति चाहते हैं॥

चल पड़ें पथ आपकी माँ, राह तू आसान कर।
गति मिले पग शक्ति दो माँ, हृदय में नवप्राण भर।
गात ढीला पड़ न पाए, शक्ति को हम साधते हैं।
सुगति दो माँ साधना में, श्रेष्ठ चिंतन माँगते हैं॥

भाव में समभाव हो माँ, साधना हम कर रहे हैं।
भाव दुर्बल हो न पाएँ, दुर्भाव से हम डर रहे हैं।
मीड़ वीणा तंतुओं से, स्वर सुमन से साधते हैं।
सुगति दो माँ साधना में, श्रेष्ठ चिंतन माँगते हैं॥

श्वास तन की चल रही है, डोर तेरे हाथ में है।
मन हृदय अंतःकरण में, माँ हमारे साथ में हैं।
पूत बनकर माँ हमी तो, तेरे मन की मानते हैं।
सुगति दो माँ साधना में, श्रेष्ठ चिंतन माँगते हैं।

—उमेश यादव

देव संस्कृति दिग्विजय अभियान की श्रृंखला के अंतर्गत मुंबई महानगर में आयोजित 47वाँ अश्वमेध महायज्ञ

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-04-2024
Regd. N0. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP - 08/2024-2026

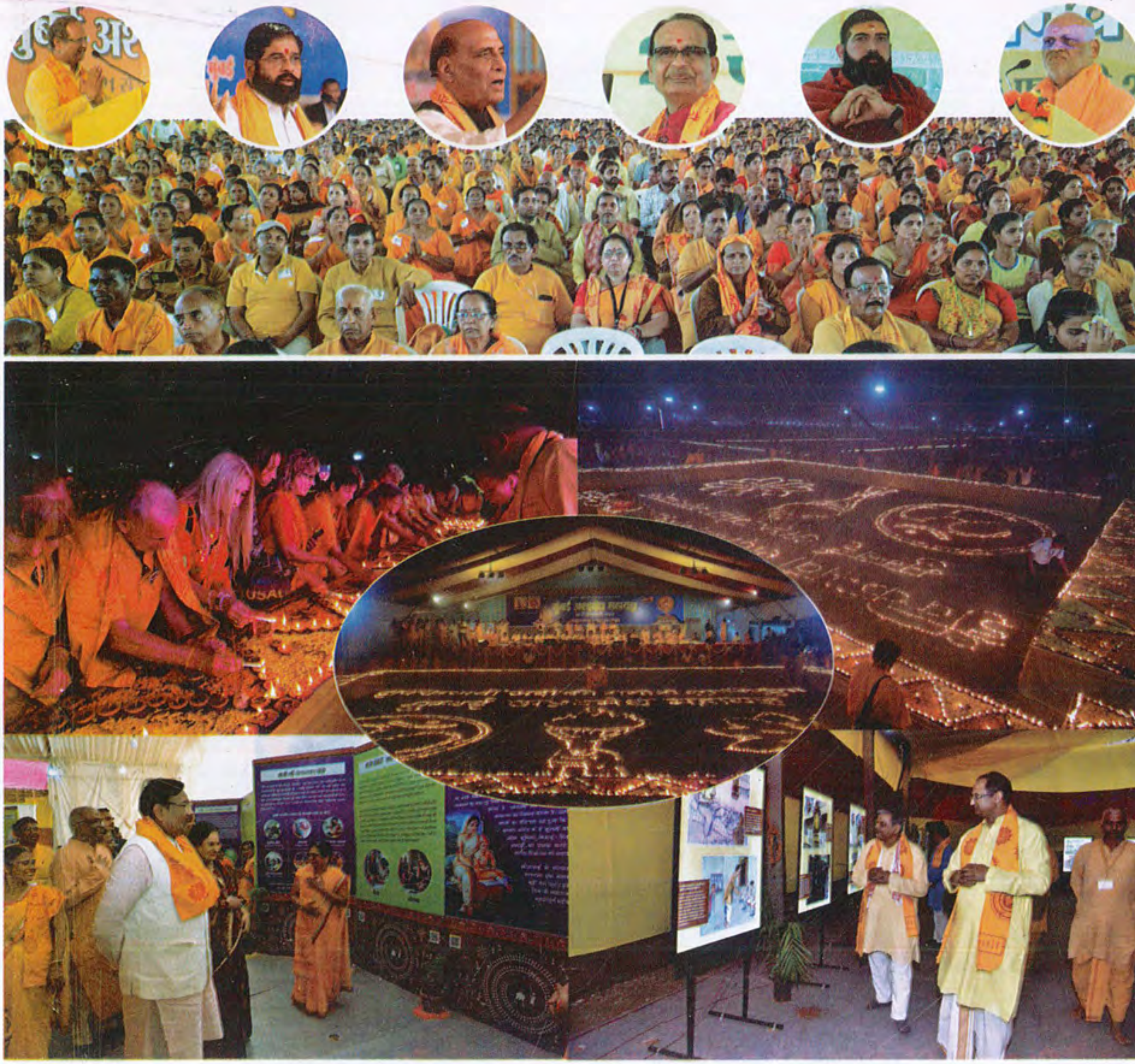

देव संस्कृति दिग्विजय अभियान की शृंखला के अंतर्गत मुंबई महानगर में आयोजित 47वाँ अश्वमेध महायज्ञ

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565-2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel के वीडियो युग निर्माण मिशन के लिए समर्पित है! हमारा एकमात्र उद्देश्य परम पूज्य गुरुदेव के विचारों को जन-जन तक पहुंचाने का है।

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel को Subscribe करने के लिए क्लिक कीजिये और Bell 🔔 बटन को जरूर दबाएं ताकि आप को नोटिफिकेशन मिलते रहे। **https://bit.ly/2KISkiz**

◆ पूज्य गुरुदेव द्वारा साधकों को दिए गए दिव्य प्रवचन, अमृत वाणी, ध्यान साधना

▼ आराध्य द्वारा लिखित पुस्तकों पर वीडियो, अखण्ड ज्योति के आर्टिकल, अमृत ज्ञान

◆ परम वन्दनीय माता जी द्वारा गाए गए भावनाशील प्रज्ञा गीत जो कि पूज्य गुरुवर को समर्पित रहे

▼ परम श्रद्धेय जी द्वारा लिखित पुस्तक आध्यात्मिक जीवन पर आधारित वीडियो एवम् आदरणीय चिन्मय भैया जी के दिव्यता से भरे उद्बोधन

एक छोटा सा प्रयास सभी प्रियजनों को गुरु के ज्ञान का अमृत पहुंचाने का...आप भी इस अमृत के ज्ञान को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाने का प्रयास कर गुरुकार्य में भागीदार अवश्य बनें "!

आप इन वीडियो को डाउनलोड करके मिशन की गरिमा के अनुरूप प्रयोग कर सकते हैं। धन्यवाद

प्रस्तुत हैं शांतिकुंज ऋषि चिंतन चैनल पर

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

All World Gayatri Pariwar Official Social Media Platform

शांतिकुंज हरिद्वार के ऑफिशल व्हाट्सएप चैनल awgpofficial Channel को Follow करे

👇👇👇

https://whatsapp.com/channel/0029VaBQpZm6hENhqlhg453J

Shantikunj Official WhatsApp Number 8439014110

शांतिकुंज की गतिविधियों एवं ग्रुप से जुड़ने के लिए अपना नाम लिख कर WhatsApp करें

👇👇👇

https://wa.me/8439014110

Official Facebook Page:-

https://www.facebook.com/awgpofficial

Official Twitter:-

https://twitter.com/awgpofficial

https://twitter.com/DrChinmayP

Official Instagram:-

https://www.instagram.com/awgpofficial

https://www.instagram.com/shantikunjrishichintan

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

Official Telegram:-

https://t.me/awgpofficial

https://t.me/shantikunjrishichintan

Youtube Channel:-

https://yt.openinapp.co/nq7tt

https://www.youtube.com/c/RishiChintan

https://www.youtube.com/c/shantikunjvideo

AWGP Official Website

http://www.awgp.org/

http://literature.awgp.org

Rishi Chintan

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel